कविता-कामिनि-कान्त, कवि शिरोमणि

श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा "शङ्कर"

का

आशीर्वाद

ज्ञान शक्ति का दान दे—
हे ! शङ्कर भगवान।
स्वाँति बूँद साहित्य को—
कर ले चातक पान।



चातक की रक्षा करे,
शङ्कर जगदाधार।
भारत में "नैवेद्य" का,
हो भरपूर प्रचार।



चातक से न्यारा न हो,
शङ्कर शुभ साहित्य।
अपनाले नैवेद्य को,
समझ दोष राहित्य।

नैवेद्य

रचयिता—

कुँ० हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

प्रकाशक—
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

प्रकाशक
महेन्द्र सञ्चालक
साहित्य-रत्न-भण्डार,
सिविल-लाइन्स, आगरा।

प्रथम संस्करण | नाग पञ्चमी सं० १९९६
जुलाई १९३९ | मूल्य एक रुपया

मुद्रक
साहित्य प्रेस,
सिविल लाइन्स, आगरा।

लेखक—



मैं न मिल सका मुझ से पहिले तू जाकर के उन्हे मिला।
मेरे चित्र भाग्य तेरे लख, मेरा मानस कमल खिला॥

—सस्नेह "चातक"

प्रेमोपहार

श्रीयुत् ______________________

____

____



लेखक—



में न मिल सका मुझ से पहिले तू जाकर के उन्हें मिला।
मेरे चित्र भाग्य तेरे लख, मेरा मानस कमल खिला॥

—सस्नेह "चातक"

प्रेमोपहार

श्रीयुत् ______________________

____

____



नैवेद्य

कभी अपनायेंगे प्राणेश,
इसी आशा में सब कुछ भूल।
मधुर मेरे ही उर के भाव,
खिल उठे हैं सखि ! बन कर फूल॥

स्वीकृति

बिना सूचना दिये नाथ! तुम आये तुमने भला किया,
आयोजन से हमें दैन्य, ढकने का अवसर नहीं दिया।
अर्घ्य और नैवेद्य कहाँ है,
सब बातों में शून्य यहाँ है।
केवल मेरा 'मैं' प्रस्तुत है, कह दो हँस कर वही लिया।



पूज्य भाई

बाबू शंकरबख्शसिंहजी

के

कर कमलों में

मेरा यह नैवेद्य नामक काव्य-संकलन

सादर सस्नेह

समर्पित

है ।

अन्तर्कवि से

बाँधो ऐसी स्वर-लहरी—
छूटें सारी चिन्ताएँ,
उमड़े रस शब्द सुमन से
भावुक अलि हृदय जुड़ाएँ।

शीर्षक-सूची



प्राक्कथन



मैं कविता को विचार (Intellect), भाव (Emotion) और कल्पना (Imagination) इन तीनों के सुन्दर सामञ्जस्य के रूप में मानता हूँ। एक सन्दर्भ शालिनी रचना में इस त्रिक् की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय-हृदय सवेद्य है। काव्याचार्यों ने काव्य को भिन्न भिन्न परिभाषाऐं की हैं। किसी ने 'रसात्मक वाक्य काव्यम्' रसमय वाक्य को ही काव्य की परिभाषा में परिगणित किया है और कहा है—"यतो न नीरसा भाति कविता कुल कामिनी" अर्थात् कविता-कुल कामिनी नीरस होने से शोभा नहीं पाती है।

किसी ने—"निर्दोषा लक्षणवती सरीतिगु`ण भूषणा।
सालंकार रसानेक वृतिर्वाकाव्य नाम भाक्।

सुन्दर अर्थ उत्पन्न करने वाली, तथा गुण, भूषण रस, छन्द, व्यग्य, वृति प्रतिपादक, दोष रहित रचना को ही काव्य का नाम दिया है। पाश्चात्य विद्वानो में भी काव्य परिभाषा विषयक मतभेद हैं। कोई तो—

Poetry is spontaneous overflow of emotion—भावावेग के स्वाभाविक स्फुरण को कविता कहता है, और कोई Poetry is at bottom a criticism of life

कविता को मानव जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण बतलाता है, परन्तु सब का निष्कर्ष हसरत साहब के शब्दों में यही है—

"शेर कहते हैं उसको ऐ हसरत—
सुनते ही दिल में जो उतर आये"

कविता की कसौटी मनुष्य का हृदय है। जिस प्रकार 'हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापिवा' स्वर्ण की पवित्रता और कालौंच अग्नि में देखी जाती है, उसी प्रकार कविता की परख का साक्षी मानव का हृदय ही है। अस्तु, मैं कवि न भी होऊँ, परन्तु कविता और कवियों का प्रेमी अवश्य हूँ, यही मेरे लिए क्या कम गौरव की बात है? ईश्वर ने मुझे एक भावुक हृदय दिया है, साथ ही मस्ती भी देने में कृपणता नहीं की—

खजर चले किसी पै तड़पते हैं हम अमीर—
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है

× × ×

वही समझेगा मेरे दर्दे दिल को
जिगर में जिसके इक नासूर होगा—(अमीर)

× × ×

हम वहाँ हैं जहाँ से हम को भी—
कुछ हमारी खबर नहीं आती। (गालिब)

मैं अपने कवि-जीवन में माता प्रकृति की सन्निधि में आने का सतत प्रयास करता रहा हू। उफ! जब बसंत में फूलों का नीरव उत्सव प्रारम्भ होता है, और जब मन्द समीरण यह सुसमाचार दूर-दूर तक फैला आता है, तब जैसे मेरे कान में भी कोई आकर चुपके से कह जाता है कि आज जल, स्थल, आकाश सभी मधुमय हैं, तू ही अकेला कैसे उदासीन रहेगा—

"चल उठ तू भी आनन्द लूट
भर-भर जीवन में नव मिठास

हँस ! हँस ! फूलों सा मधुर हास।
मानव तू ! क्यों इतना उदास।"

सच पूछो तो मुझे फूल प्यारे भी बेहद हैं। रविबाबू के शब्दों में—'फूलों में उद्‌भिद् तत्व के अतिरिक्त और भी कुछ है क्योंकि तभी तो प्रेमियों से ये इतना आदर पाते हैं, प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य फूलों के रूप में ही प्रकट हुआ है। यदि मैं प्रकृति के इस सौंदर्य को पकड़ कर शब्दों द्वारा कागज पर उतार सका होता, तो मुझे कितनी खुशी होती, यह उसी समय बतलाया जाता तो अधिक समीचीन होता।

"लज्जते वस्ल को परवाने से पूछे उश्शाक
यो मजा क्या है जो वे जान दिये देते हैं।"

मानव निरा मजदूर तो है नहीं, जो दिन रात कार्य भार से पिसता ही रहे, उसे भी मन बहलाने के लिए कुछ चाहिए। वही कुछ तो हमें प्रकृति से मिलता है। स्वयं वैदिक ऋषियों ने प्रकृति की प्रशंसा में कहा है। बुद्धि का वास्तविक विकास पर्वत की उपत्यकाओं और नदियों के संगमों मे ही होता है। अंग्रेजी कवि विलियम वर्डस्वर्थ ने कहा है—

One impulse of a vernal wood
May teach you more of a man—
Of moral evil and good
Than all the sages can

(ऋषि मुनियों की अपेक्षा मनुष्य के भले बुरे के सम्बन्ध में बासन्ती वन का एक प्रभाव तुम्हें अधिक शिक्षा दे सकता है)।

विश्वात्मा का लालित्य जैसे प्रकृति में फूट पड़ा है। सारी रात जाग कर कौन चाँदनी रूपी दूध की बरसा करता है? नीरवता का शिशु उसे ही पीकर क्यों रहता है? फूलों के बन्धन से सुरभि छूट कर किसे ढूँढने जाती है? इसकी खोज कौन करता

है ? सरिता के हृदय में लहरों के मिस से जो जीवन स्पन्दित हो रहा है, उसकी सार्थकता अपने को अगाध में मिलाने ही से क्यों है ? अभिसारिणी भी अपने मानस-वृन्दावन में प्रियतम से भेंट कर के ही शान्ति क्यों पाती है ? प्रातःकाल दुध मुँहे बच्चे सा प्यारा क्यों लगता है ? और रात जैसे एक यौवनोन्मुखी मदिराक्षी सुन्दरी-सी क्यों है ? प्रेयसी के श्यामवर्ण लोचनों के सदृश ही अन्धकार में क्यों एक प्रकार का रस है ? सान्ध्य-वेला की सिन्दूर वर्षा, किसी के कल कपोल पर अङ्कित लज्जा लाली सी क्यों मधुर लगती है ? निर्झर अपने भीतर की वेदना किसे सुनाने के लिए बाहर निकाल रहा है। निर्जीव प्याले के मुँह में भी जिस सौंदर्य को देख कर पानी भर आता है, वह सौंदर्य कैसा है ? आदि अनेक माधुर्य्यमूलक भावों की स्वर्गीय सी सुधा का आदि श्रोत कहाँ है ? इन सब का बस एक ही उत्तर है—प्रकृति। रचना द्वारा ही रचयिता की प्राप्ति होती है। इस निखिल सृष्टि के स्वामी को हम उसी के द्वारा निर्मित कण कण में देख सकते हैं। चाहिए केवल देखने वाली आँखें। मैं पहले ही कह चुका हू कि भावुकता की कृपा मुझ पर जरूर है। उसी के परिणाम स्वरूप ये कतिपय Sentiments भावोच्छ्वास (नैवेद्य) नाम से जनता-जनार्दन की सेवार्पित है।

समय-समय पर जिस छन्द में जब-जब जो भाव प्रकट हुए, उन सब का एकत्रीकरण ही यह पुस्तक है। व्रजभाषा में लिखित अनेक छन्द इस सग्रह में नहीं दिये हैं, इसके यह अर्थ नहीं कि वे मुझे अच्छे नहीं लगे।

'नैवेद्य' में मेरे दो प्रणय पत्र हैं। वे मेरे विगत जीवन की सुनहली मादक सन्ध्या की दो क्षीण रेखाएँ हैं। कुमारी हेमन्त—हेमन्त ऋतु की भाँति आयी और सदा के लिए चली गयी। यद्यपि हेमन्त वर्ष में एक बार दर्शन दे जाता है, पर हेमना नहीं

आई ! आई ही नहीं !! दिल भर जाता है, अन्तर्वासी पुकार उठता है —

"कौन बतलाओ मेरी सुस्मृति के द्वार पर—
नित्य नये-नये भेप धर कर आता है।
कौन उठता है ? कौन सोता मेरे पास छिप—
कौन प्राण बीन पर राग नित्य गाता है।"

यह सब लिखते हुए मेरा हृदय न जाने कैसा कुछ हो रहा है। अब उसके एक भाई चि० कुमार निहालसिंहजी ही जी बहलाने के मुझ निस्साधन के साधन शेप रह गये हैं। जिस प्रकार आलम कवि ने अपनी प्रियतमा के निधन पर दुःखित हो कर लिखा था—

"जा थल कीन्हें विहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करैं
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यों करैं।
आलम जौन से कुञ्जन मे करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं,
नैनन में जो सदा रहत, तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करैं।।"

मैं वैसा तो कुछ नहीं लिख सका, परन्तु उनके अपने (अब अपने ही) दोनो पत्र दे दिये हैं। खैर यह तो स्वप्निल ससार का स्वप्न था।

"ख्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था।"

× × ×

हिन्दी में ईश्वर की कृपा से अब पिष्ट पेपण कम रह गया है। नयी दिशा में काफी प्रगति हो रही है। अब उसमें भी अपना कहने योग्य कुछ है। मैं कहाँ तक कल्पना का मार्ग प्रशस्त कर सका हूँ, इसे समय ही बतलावेगा। Originality मौलिकता का ध्यान भी मुझ से एक क्षण को नहीं छूटा है। वैसे तो कवीन्द्र कालिदास की कृति में महाभारत के अनेक भाव, यहाँ तक कि

पद पक्ति में भी कहीं कहीं साम्य है।

प्यारे हमैं तुम्हैं अन्तर पारति,
हार उतारि उतै धरि राखौ"

—देव

Ornaments would mar our union,
They would come between thee and me,

—रवीन्द्र

यही नहीं, पाश्चात्य और पौर्वात्य ऐसे कवियों के भाव जो समकालीन भी नहीं थे, जिनकी भाषा भी भिन्न थी, परन्तु दोनों के उर अजिर मे प्रकृति का प्रेम प्रदीप प्रकाशित हो रहा था, दोनों ही फूलों की मौन भाषा सुन कर हर्ष से भर जाते थे। आदि कवि वाल्मीकजी ने चित्रकूट का पर्वतीय दृश्य अङ्कित करते हुये राम के द्वारा सीता मे कहलाया है—

आदीप्तानिव वैदेही, सर्वत पुष्पिताग्नगान्।
स्वै पुष्पै किंशुकान्पश्य मालिन शिशिरात्यये।

हे वैदेही! सब ओर फूले हुए मानो जलते हुए इन किंशुकों को देख। जो वसत में अपने फूलो की मालाएँ हाथ में लिए खड़े हैं।

ठीक ऐसा ही भाव विलियम वर्डस्वर्थ ने भी अपनी (Lines written in early spring, नाम्नी कविता में व्यक्त किया है—

Through Primrose tufts, in that sweet bower
The Periwinkle trailed its wreaths,

उसी मधुर कुञ्ज में प्रारम्भिक वासन्ती पुष्प स्तवकों में (पेरीविंकिल) लता विशेष ने अपनी मालाएँ लटका दीं।

× × ×

मेरे यह सब लिखने का यह प्रयोजन नहीं, कि सूर-सूर तुलसी शशी उडुगन केशवदास' जी ने भावापहरण किया है। नहीं उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती कवियो के काव्य से लाभ उठाया है, परवर्ती कवियों को उठाना भी चाहिए। आज हिन्दी में अगरेजी, बगला आदि भाषाओं के पठन पाठन से जो क्रान्ति हो रही है, वह भविष्य में शुभाशा सूचक है। राष्ट्रभाषा हिन्दी की सर्वतोमुखी उन्नति वाञ्छनीय है। आज आत्मानुभूति, आत्म प्रकृति, आत्म जिज्ञासा को समीचीनतया प्रकट करना ही कला का ध्येय है। एक विद्वान् के शब्दों में—

The impulse of self-expression is the
origin of all art

स्वप्रकाशन का भाव ही समस्त कलाओं का मूलाधार है। प्राचीनता का वह युग लद गया है, जब कविगण केवल राजा-महाराजाओं के लिए ही काव्य का निर्माण करते थे। अब तो कविता में अपनापा आ गया है। वह जीवन के अधिक निकट आ गयी है।

सब कहते हैं खोलो ! खोलो !
छवि देखेंगे जीवन घन की।
आवरण स्वय बनते जाते—
है भीड़ लग रही दर्शन की।

—प्रसाद

× × ×

कौन आया था न जाने स्वप्न में मुझ को जगाने—
याद में उन उँगलियों के हैं मुझे पर युग बिताने।

× × ×

सजनि ! मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात
सुभग ! मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात।
सजनि ! मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात।

—महादेवी

दे रही कितना दिलासा, आ झरोखे से जरा सा,
चाँदनी पिछले पहर की पास में जो सो गई है
रात आधी हो गई है।
बात करते सो गया तू, स्वप्न में फिर खो गया तू।
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात
साथी ! सो न कर कुछ बात।

—बच्चन

अन्त में प्राचीन सरणी के पालन करने के लिए और मजे से अपने दोषों पर धूल डालने के लिए मैं तो यही कहूँगा।

क्षन्तव्य एव कविभि कृपया प्रमादात्
काव्येऽत्र कश्चिदपि य पतितोऽपशब्द
प्रीतिर्यथास्तु सुहृदो मघवा सुशब्दै
किं सा तथास्त्व सुहृदामयि माऽपशब्दै ।

"यदि मेरे काव्य में आपको अपशब्द दोष मिले तो कृपा कर उस पर ध्यान न दीजिएगा। सज्जनों को तो सुशब्दों से आनन्द मिलता है और दुर्जनों को अपशब्दों से। मैं दोनों ही को प्रसन्न रखना चाहता हूँ। यदि मेरे काव्य में कोइ दोष देख पड़ेंगे तो समझूँगा कि असज्जनों को भी आनन्दित करने के लिए सामग्री प्रस्तुत है।" पुरातन नूतन के प्रेमियों से तो मैं कालिदास की तरह यही कहूँगा जो उन्होंने अपनी सर्वप्रथम रचना 'मालविकाग्नि मित्र' में लिखा है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्,
न चापि काव्यम् नवमित्यवद्यम ।

सत परीक्ष्यान्यतरद् भजते—
मूढ़ पर प्रत्ययनेय बुद्धि ॥

"जो कुछ भी पुराना है, वही अच्छा नहीं होता और जो नया है वह काव्यमय नहीं है, ऐसा भी कहना उचित नहीं है। सत, सुधीजन गुण अवगुण की परीक्षा करने पर विचार करते हैं। और मूढ़ लोग दूसरों की बुद्धि पर विश्वास रख कर अपनी सम्मति देते हैं।" आशा है कि नीर क्षीर विवेकी हंस-बुद्धि पाठक जो ग्राह्य है उसे ही गृहण करेंगे।

× × × ×

मेरी इस साधारण कृति पर अनेक गण्य-गुणज्ञ पद-वाक्य प्रमाण पारावारीण विद्वानों ने शुभ सम्मतियाँ देकर मुझे जो गौरव प्रदान किया है, उसके लिए मैं विनयावनत हो कर उनके विश्वास को सफल करने के लिए जी जान से सचेष्ट हूँ। खेद है कि आचार्य प० पद्मसिंहजी शर्मा जिन्होंने नैवेद्य की भूमिका लिखने का वचन दिया था, आज स्वर्गीय हैं।

अन्त में अभाव में उन्हीं के अनन्य स्नेह भाजन और अपने अभिन्न प० हरिशंकरजी शर्मा कविरत्न के ऊपर मैं यह भार सादर सहर्ष समर्पित कर के निश्चिन्त होता हूँ।

मेरे अभिन्न मित्र श्री भाई महेन्द्रजी का भी मैं सस्नेह आभारी हूँ, जिनकी आज्ञा से मैंने ये बिखरे हुए तृण इकट्ठे कर डाले हैं, परन्तु डरते डरते उनसे इतना तो कह ही देना चाहता हूँ कि—

'नाक छनवाने की कह दो, तिनके बिनवाने के बाद।'

कहीं वे इसे पढ कर दूसरी आज्ञा न दे बैठें। नहीं तो मेरे लिए बड़ा कठिन हो जायगा। ईंट पत्थर के आगरे में ब्रज की रज या उन पदों की धूल तो मिलेगी नहीं, जो कवि घनानन्दजी के कथनानुसार—

'विरह विथा की मूरि, आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन पाइन की हा हा नेकु आनि दै।'

किसी से यों कातर प्रार्थना करनी पड़े, "वहाँ तो सब जगह पत्थर पड़े हैं।" —अस्तु

अब अपने कुछ अत्यन्त सन्निकट स्नेही चि० कुमार राजेन्द्रदेव वर्मा बी० ए०, कुँवर जगवीरसिंहजी चौहान बी० ए०, डिप्टी जेलर, वाणी रत्न, प० देवीदयाल पचौरी और भाई छिव्यनी का सधन्यवाद प्रेम-स्मरण करता हुआ लेखनी को विश्राम देता हूँ।

शान्ति निकेतन
अतरोली, छिबरामऊ (फर्रुखाबाद)

विनम्र—
हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक

नैवेद्य

साध

तेरी वीणा की स्वर-लहरी
कानों को खींचे निज ओर—
जिसे श्रवण करते-करते ही—
नाच उठे मेरा मन-मोर ॥

अन्धकार से युक्त निशा—
जब तेरी नीरव महिमा को—
गाती हो, तब मैं भी गाऊँ—
होकर के आनन्द विभोर ॥

जब अनन्त अम्बर में आ शशि
खोज कर रहा हो तेरी—
तब मैं भी उसका साथी हो—
प्राप्त करूँ तव करुणा-कोर ॥

जब विकसित सौन्दर्य्य सखे ! तव
फूलों पर हो बरस रहा—
तब मेरी प्यासी आखों में—
तेरी छवि की उठे हिलोर ॥



उद्‌गार

मेरी मनोभावना कब से उस पथ पर है घूम रही।
अहा ! पड़ेंगे चरण यहाँ तब, इससे उसको चूम रही।
आज धूलि कण भी उस पथ के मुक्ताओं को रहे पुकार–
"आओ ! देखो छटा हमारी तुम भी हो जाओ बलिहार ॥"

❀ ❀ ❀ ❀

देखो तो मै उस लतिका पर करता हूँ कब से अनुराग–
कभी फूल आयेंगे उसमें, और फलेंगे मेरे भाग।
कण्ठ देश में पहुँच दिलायेंगे निश्चय वे मेरी याद–
"प्रेमी के आँसू से सिञ्चित हम है उसके प्रेम प्रसाद" ॥

❀ ❀ ❀ ❀

मैं उस दिन के मधुर स्वप्न को बना चुका हूँ जीवन ध्यान
जिसमें मिलन हुआ था तुम से, और विरह का था अवसान।
है बस यही कामना केवल होवे वह मम स्वप्न अभग–
जिससे कभी न छूटे मुझ से मेरे जीवन धन का सग ॥



भेंट

तन यह तो रोगों का घर है,
क्षीण हो रहा है जो हरदम ।
ऐसी अस्थिर वस्तु भेंट दूँ—
तो प्रसन्न होंगे कब प्रियतम ?

किशलय से कोमल हाथों में
डरती हूँ करते अर्पित 'मन'
भार समझ कर कहीं न इसको—
हा ! हा !! लौटा दें जीवन धन ?

अर ! जान कर भी अजान मैं—
क्यों बनती हूँ इस अवसर पर ।
अपर वस्तु की क्या चिन्ता जब—
सदा जान देती हूँ प्रिय पर ॥



अनुभूति

कल कुँजों में खिली जा रहीं
सखि ! प्रमुदित पुलकित कलियाँ,
क्या इन ने मेरे प्रियतम की—
देखी हैं पुलकावलियाँ ?

कोमल फलित कमल दल मुझको
लगता कैसा मनभाया,
तो क्या इसने भी प्रियतम के—
करस्पर्श का सुख पाया ?

मधु-भीने सौरभ से लद कर,
इठलाता चल रहा पवन।
क्या इसने भी मेरे प्रिय का—
देखा है सखि ! मन्द-गमन ?

आ प्रति दिन प्रभात वेला में
स्वर्ण लुटाती है ऊषा,
रत्नाभरण रम्य प्रिय की क्या
देखी कहीं वेष भूषा ?

श्यामा पञ्चम स्वर में गाती
अपनी वाणी में मधु घोल,
सखी ! सुने क्या इसने भी हैं
प्रियतम के वे रसमय बोल ?

फूल सुरभि धन बाँट रहे हैं,
पर वे कब कुछ लेते हैं,
मेरे प्रिय के त्याग भाव पर
जान न क्या वे देते हैं ?

लहरों के कर बढ़ा कर रही
सरिता तट का आलिङ्गन,
क्या इसने प्रियतम से मेरा
देखा है सखि ! मधुर-मिलन ?

सान्ध्य अरुणिमा के मिस सूना-
नभ भी दिखलाता अनुराग,
मेरे प्रिय का प्रेम सखी री !
उठा सभी के उर में जाग !

नैवेद्य

सान्द्र चन्द्र का दीपक ले कर
निशि आरती उतार रही,
कौन नहीं सखि! मेरे प्रिय पर
अपना तन मन वार रही?

कण-कण से फूटा पड़ता है
प्रियतम का आनन्द अमोल,
तो भी हाय! बावली दुनियाँ
नहीं देखती आँखें खोल!



निशीथ-मिलन



मिलन भावना जगती में छाई है चारो ओर,
आज मिलन के सागर में आई है एक हिलोर।
रात उठाये कान सुन रही है मिलने का गान—
मिलन-स्वप्न देखता पल्लवों पर सोया पवमान।

विटपी हैं उद्ग्रीव और नभ के हैं नेत्र अतन्द्र,
देख रहे हैं सभी मिलन का मधुमय नूतन चन्द्र।
वसुधा से चाँदनी मिल रही है गलबहियाँ डाल,
पात पात पर लिखते हिम-कण मिलन कथा का हाल।

डाली डाली पर कोयल वाणी में अमृत घोल—
कहती है "लो मिलो ! मिलन के ये पल हैं अनमोल।"
किसी हृदय की मिलन भावना ही सुन्दर सुकुमार—
लता बनी लिपटी तरुओं से आज कर रही प्यार।

मत्त-मधुप मकरन्द पी रहे कुसुम-पात्र में डूब,
चारु कल्पना की छवि सी भू पर अङ्कित है दूब।
सुरभि फूल सा सदन छोड़ दृग में भर नूतन प्यार—
प्रिय से मिलने को चुपके-चुपके करती अभिसार।

फुल्ल-कुमुदिनी की आँखों का पाने को मृदु प्यार—
पुष्करिणी ही में सुधांशु आ बैठा है इस बार।
करता है रस-पान 'कुमुद' का घूँघट कर से खोल—
सिहर लाज से हँस देती वह नहीं फूटता बोल।

फिर न मिलेगा यह सुयोग ऐसा सुन्दर शुभ काल—
यही जान कर मुकुलों ने खोले निज नेत्र विशाल।
देखें! देखें! आज देख लें! वे भी मिलनानन्द!
पढ़ लें! जगती के कण-कण में लिखे मिलन के छन्द!

किरणों का हिन्दोल, मिलन की परी रही है झूल,
विश्व-वृन्त पर अन्तहीन खिल उठा मिलन का फूल।
धूल आज बन गयी स्वर्ग है और स्वर्ग है धूल,
अब न अभाव अतृप्ति कहीं है, कहीं न मन की भूल।

शैल हृदय में समा सका जो नहीं मिलन का मोद—
वही सरित बन फूट पड़ा है आज विजन की गोद।
ताली बजा तरंगें करतीं उठ उठ करके लास—
मिलन-बाँसुरी आज बज रही है प्राणों के पास।

हृदय-वल्लकी पर किसने दी मिलनाङ्गुलि यह फेर—
मूक नयन भी लगे बोलने, लगी न कुछ भी देर।
टूट गईं बन्धन की कड़ियाँ मिला नया आलोक,
मधुर-मिलन की एक झलक ने मिटा दिये सब शोक।

नव बसन्तमय हृदय प्रकृति का फूल उठा है आज,
भीतर बाहर सभी जगह है सजा मिलन का साज।
मधुर मिलन ने मिटा दिये जीवन के सारे खेद,
ऐसा लगता अब न रहेंगे कहीं विरह, विच्छेद।

मिलन का उमड़ा पारावार,
आज हम तुम हैं एकाकार।



बिखरे फूल

ओ मेरे जीवन-वसन्त ! आ
अन्त दुखों का कर दो !
आँखें फूल बना कर इन में
अपनी छवि को भर दो।



खिले फूल हैं नेत्र हमारे,
देख रहे जो तुमको प्यारे।



मृदुल फूल के मुख में किसने
मधुर हास्य का जादू भर कर
मुझे रिझाने को भेजा है—
बतलादो मेरे चिर सुन्दर ?



नवल लताओं का नव यौवन
निकल निकल कर मानो
फूलों के मिस घनीभूत है
दृग हों तो पहिचानो ?



आज सखि ! हँसते हुये प्राणेश फूलों बीच पाये
दया कर प्रिय ने मिलन के मार्ग हैं कितने बनाये
दया कर प्रिय ने मिलन के द्वार हैं कितने बनाये
आज सखि !



फूल हैं प्रिय की याद दिलाते
वैसे ही मृदु गात सरस हँस हँस हैं चित्त चुराते
वैसे ही प्रेमी जन की आँखों में हैं गड़ जाते
फूल हैं प्रिय की—



कभी अपनायेंगे प्राणेश
इसी आशा में सब कुछ भूल
मधुर मेरे ही उर के भाव
खिल उठे हैं सखि ! बनकर फूल



विश्व का चित्रकार सुकुमार
तूलिका लेकर कर में मित्र।
विश्व-छवि चित्रण को जब चला
बन गया सभी फूल का चित्र



नव यौवन से पूर्ण धरित्री के ओ मृदु उच्छ्वास कुसुम!
तुहिन-बिन्दुओं से शतदल पर लिखो प्रेम-इतिहास कुसुम
सशय सर्प तुम्हें कब डसते, तुम में प्रभु का वास कुसुम।
जब तक रहें, तुम्हारा सम्मुख रहे हमारे हास कुसुम!



शैशव से तुम मधुर और यौवन-से सुन्दर
निखिल सृष्टि की एक काव्य-कल्पना मनोहर
लतिका के मधुपूर्ण तुम्हीं मगल घट प्यारे।
कवियों में क्या शक्ति कि गुण गा सकें तुम्हारे।
जाने कितना इतिहास है, छिपा तुम्हारे हास में
तुम वासित मन-मन्दिर करो, और बसूँ मैं पास में



मेरी आँखों से फूलों को जो तुम कहीं देख पाते—
तो निश्चय है यही कि तुम भी फूलों ही के गुण गाते।



जब प्रभात होता जगते हैं, सन्ध्या होती सो जाते हैं,
शान्ति किसी की भंग न करते, बीज प्रेम के बो जाते हैं।
लतिका के ये शिशु सुन्दर हैं, सरल-हृदय क्रीड़ा-रत निर्मल,
ये क्या जाने जग कैसा है? कैसे हैं उसके सुख-दुख-छल॥



नन्हा-सा इनका जीवन है,
नन्हा सा इनका संसार।
यदि बन सके करो तो क्षणभर
तुम भी इन फूलों को प्यार।



इच्छा है, अपनी इच्छाएँ—
एक फूल में भरदूँ।
और तुम्हारा मार्ग जहाँ हो
वहाँ उसे मैं धरदूँ।
चरण तल चूम ले



फूलों के मादक सौरभ-सा
मेरा तेरा प्यार।
आज हो रहा है जगती में
मिल कर एकाकार।



चाँदनी के रजत अञ्चल मे हँसी के फूल
सजनि ! बिखरा कर करो मत एक अल्हड़ भूल
हाँ ! हाँ !! एक अल्हड़ भूल !

शतदल के सौरभ को बोलो,
कौन सका है बाँध।
हृदय की कब रुकती है साध।

बड़ा भाग्य है नाथ ! तुम्हारे किसी काम में आऊँ तो
पूजा ही का फूल बनूँ, चरणों मे चढ सुख पाऊँ तो

कितनी जल्दी सुमन ! सुरभि धन
सौंप दिया तुमने जग को।
तो भी मानव नहीं सीखता–
आत्म-त्याग के इस मग को।

फूलों जैसा हो सुन्दर
आकर्षक जीवन मेरा।
बस और नहीं कुछ प्यारे
हो यही अनुग्रह तेरा।

लतिकाओं से पुष्प-वृष्टि सा—
मधुर अयाचित मेरा प्रेम,
लेकर के प्रतिदान न कुछ भी—
करता रहे जगत् का क्षेम।



खिले फूल या प्रकृति देवि की
खुली कितावें जो थीं बन्द।
अपना-अपना पाठ ध्यान धर
पढ़ने लगे विहग सानन्द।



खिले फूल या उपा काल में—
मुठी लताएँ खोल।
बाँट रहीं याचक अलियों को—
सौरभ धन अनमोल।



राशि राशि फूलों में परिणित—
जिसका है लावण्य।
उसी को अर्पित प्रेम अनन्य।





जो फूल वृक्ष से झड़ते हैं—
वे मेरे प्रियतम के अलक्ष्य चरणों पर ही तो चढ़ते हैं।
जो फूल डाल से झड़ते हैं।



फूल किसी का स्वर्ग देखने को कब जाते।
उन्हें देखने ही को देखो सुर हैं आते।



जीवन यौवन में जो कुछ है मधुर वही तो तुम हो फूल।
तुम्हें भूलना ही भूतल में होगी सब से भारी भूल॥



डाली की मृदु दोला पर—
पेंगें लेती हैं कलियाँ।
है भृत्य समीर झुलाता
गातीं गुण मधुपावलियाँ॥



उन्मद हो यौवन मद से—
फूली न समातीं कलियाँ,
फट जाता तभी वसन है—
जग कहता है पङ्खड़ियाँ।



मवल कलिका-से कब से खोल—
हृदय के बैठे रुद्ध कपाट।
भृङ्ग-से कब आये तुम नाथ?
जोहते रहे सदा ही बाट।



यह गुलाब की कली भली है—
इसे न तुम तोड़ो माली।
प्रकट कर रही प्राणेश्वर के—
पद तल-सी कुछ-कुछ लाली।



होकर फूल धूल में मिलना यदि कलिका यह पाती जान—
कभी न बनती फूल भूल वह और न मैं भी रहता म्लान।



कलिके! तब मृदु सम्पुट में—
जाता हूँ प्रेम छिपाये।
रख देना खोल पदों पर—
निर्दय जब सम्मुख आये।



तुम्हारी फुलबगिया का फूल
होऊँ, यही प्रार्थना मेरी होवे नाथ कबूल।
आते-आते तुम्हें देखकर उठूँ खुशी से फूल
तुम्हारी फुलबगिया का फूल।



नै वे द्य

फूल प्रेमोत्सव आज मनाओ
खूब जी भर कर हँसो हँसाओ
रग विरगे कपड़े पहनो इत्र सुगन्ध लगाओ,
पर्णकुटी का द्वार खोल कर झटपट बाहर आओ,
भ्रमर मित्र सब द्वार खड़े हैं उन से हाथ मिलाओ,
गान सुनाने को वे उत्सुक सुन कर शीश हिलाओ,
रसिकता निज दिखलाओ।
फूल प्रेमोत्सव आज मनाओ।



फूल तुम डाली से झड़ जाना।
यह ससार न योग्य तुम्हारे यहाँ भूल मत आना,
यौवन में ही यहाँ हाय ! असमय होता है जाना।
फूल तुम डाली से झड़ जाना।

स्वप्नो-सा जग यह विचित्र है,
सुख क्या? वह तो सलिल चित्र है,
दुख पत्थर पर की लकीर है जिसका कठिन मिटाना।
यहाँ अतृप्त कामना का है अन्त एक पछताना।
फूल तुम डाली से झड़ जाना।



लहरें हैं या अधिक
हृदय के प्यार भरे अरमान।

छब्बीस

नैवेद्य

माली पर न छोड़ना मुझ को—
अपने हाथ तोड़ना मुझ को—
फिर माला में गूथ, हृदय पर रखना है सुख मूल!
या पैरों से मसल बनाना अपने पथ की धूल।
तुम्हारी फुलवगिया का फूल।



फूल हैं या ये मनोहर प्रेम के हैं दूत आली!
प्रेम से परिपूर्ण कोमल मंजु मधु से सिक्त हैं उर-
पँखुड़ियाँ हैं सरस रसनायें, भ्रमर गुंजन मधुर स्वर
पहुण पल्लव कर हिला कर दूर से ही हैं बुलाते-
पास आने पर यही सन्देश हँस-हँस कर सुनाते-
धन्य हैं वे जो, 'सजन' सुस्पर्श सुख से पूत आली-
फूल हैं या ये मनोहर



फूल तुम प्रेम-दूत बन जाओ।
प्रियतम तक है पहुँच तुम्हारी
(मैं हूँ विरह-व्यथा की मारी)
यह सन्देश सुना कर उनको सत्वर ही ले आओ।
फूल तुम प्रेम-दूत बन जाओ।



नैवेद्य

फूल प्रेमोत्सव आज मनाओ
खूब जी-भर कर हँसो हँसाओ
रंग बिरंगे कपडे पहनो इत्र सुगन्ध लगाओ,
पर्णकुटी का द्वार खोल कर झटपट बाहर आओ,
भ्रमर मित्र तव द्वार खडे हैं उन से हाथ मिलाओ,
गान सुनाने को वे उत्सुक सुन कर शीश हिलाओ,
रसिकता निज दिखलाओ।
फूल प्रेमोत्सव आज मनाओ।

फूल तुम डाली से झड़ जाना।
यह संसार न योग्य तुम्हारे यहाँ भूल मत आना,
यौवन में ही यहाँ हाय! असमय होता है जाना।
फूल तुम डाली से झड़ जाना।

स्वप्नों-सा जग यह विचित्र है,
सुख क्या? वह तो सलिल चित्र है,
दुख पत्थर पर की लकीर है जिसका कठिन मिटाना।
यहाँ अतृप्त कामना का है अन्त एक पछताना।
फूल तुम डाली से झड़ जाना।

लहरें हैं या अधिक
हृदय के प्यार भरे अरमान।

जगदीश

फूल अधिक टूटते—
या कि दिल कौन सका है जान।



उपवन में हाय पवन ने-
मेरे जा दु ख सुनाये।
कँप उठीं लतायें सुन कर–
फूलों के अश्रु गिराये।



तेरे हित हैं सभी विकल।
पल्लव-पाणि हिला कर करते वृक्ष प्रकट मन की हलचल।
तुहिन-कणों के मिस टपकाते दुखी फूल भी निज दृग-जल।
तेरे हित हैं सभी विकल।



तुहिन-कण कब फूल के दृग से व्यथा के अश्रु झडते।
झेलने प्रिय के विरह में कष्ट हैं क्या-क्या न पडते।
तब कहीं प्राणेश के पद पद्म पर जा फूल चढते।
तुहिन-कण।



कली में देखा गोपन भाव
फूल में आत्म-समर्पण चाव



फूलों ने सुस्पष्ट कर दिया—
कलियों में जो था अस्पष्ट।
इसीलिए सब फूल चाहते—
सह कर के काँटों का कष्ट।
खोल दूँ मैं भी अपना हृदय—
विश्व तुम होओ मुझपर सदय।



जनक हृदय की कोमलता का—
अनुभव तुम करते हो फूल।
तभी सदा तुम हँसते रहते—
नहीं तुम्हें दुख देते शूल।



क्षणभंगुर जीवन पर हम सब व्यर्थ रहे हैं फूल,
हाय ! हमारी इसी भूल पर हँसते हैं क्या फूल ?



एक फूल जब जहाँ डाल से झड़ गया—
आकर के झट वहाँ दूसरा अड़ गया
बहुत दिनों तक रिक्त न रहता स्थान है,
है अभाव में भाव प्रकृत यह ज्ञान है।



सरल रूप-माधुरी रात भर की फूलों ने प्रिय की पान—
तुहिन कणों के व्याज दृगों में वही झलकती श्रम छविमान।
सरल चित्त किम्वा फूलों के हुए देख प्रिय-छवि प्यारी—
हिम-कण कहने लगे उसे सब सचमुच भूल हुई भारी।
नहीं ! नहीं !! प्रिय अधर-लालिमा देख कुसुम भी ललचाये
हिम-कण कब ? प्रेमातुर हो कर मुँह में पानी भर लाये।

२

जाने कब से तुम्हें देखता आया हूँ मैं फूल—
किन्तु न लोचन थके, लगे तुम अधिकाधिक सुख-मूल।

× × ×

आँखों में मधु और अधर पर झलका दी मुसकान—
चपल अपाङ्गों से झुक करते प्रेम-बाण सन्धान
विंध गया हूँ मैं सब कुछ भूल।
अरे ! ओ मेरे प्यारे फूल !
तुम पर मर कर ही जीता हूँ, जीता ही मैं मरता हूँ
अपना ध्यान नहीं है तो भी ध्यान तुम्हारा धरता हूँ।
रोम रोम मेरे शरीर का करता प्रियतम तुमको प्यार—
उठ उठ कर के राह तुम्हारी देखा करता बारम्बार।
जितना प्यारा तन कोमल है उतना ही यदि मन होता।
तो फिर क्यों मेरे जीवन का बाग बिगड़ कर बन होता।

इसकी चिन्ता नहीं कि मुझको प्यार करो तुम या न करो ।
पर इतनी है विनय कि मेरा प्रेम सदा स्वीकार करो ।

× × ×

मत बोलो तुम फूल हिलाकर ग्रीवा यह बतलादो भाव—
समझ लिया तुमने मुझको है, स्वीकृत है मेरा प्रस्ताव ।
खुशी से मैं भी जाऊँ फूल ।
अरे ! ओ मेरे प्यारे फूल ।

हैं ऐसे कुसुम छबीले
भड़कीले और सजीले ।
सौन्दर्य-सुरा दृग पीते, मन है पागल हो जाता,
अपराध एक करता है पर दण्ड दूसरा पाता ।
हैं ऐसे कुसुम फबीले
मोहन मन्त्रों से कीले ।

"दो दिन के कुसुम सजीले—
दो दिन बसंत की लाली ।
दुनियाँ में तो कवि होती—
बस चार दिवस उजियाली ।।"

"माना यह ठीक कथन है, पर कैसे मन समझाऊँ,
नश्वर में अविनश्वर को, मैं कहाँ ढूढ़ने जाऊँ ?"

"अपने अन्तर में खोजो—
वह तुमको वहीं मिलेगा।
अक्षय अनूप भू-तल में
फिर प्रणय प्रसून खिलेगा।"

कभी चुना था अधर वृन्त से प्रथम प्रणय का पहला फूल।
किन्तु मधुरता अब तक उसकी चुभा रही है उर में शूल।

है अनुराग राग से रञ्जित—
मेरे ये पाटल के फूल।
तुम्हें दिलाते याद न आश्रो—
जिससे कहीं मुझे तुम भूल।

मेरे फूल मुझे प्यारे हैं, मैं फूलों का प्यारा हूँ
फूलों का आदर मेरा है, मैं उन से कब न्यारा हूँ।

यदि फूल न तुम होते तो फिर—
संसृति सूनी होती कैसी

सोचे से भी डर लगता है—
कल्पना भयानक यह ऐसी।



फूलों का सौन्दर्य दिखा कर—
काँटे निज क्रूरता छिपाते,
ठंडी आह पवन भरता है—
पत्ते कर मल-मल पछताते।
फूल भी इस दुख से झड़ जाते।
आवरण से सहृदय घबड़ाते ॥



हँसते ही हैं फूल, और रोती है शबनम।
कहीं खुशी है और कहीं पर होता है गम।



मानव तू क्यों इतना उदास ?
तेरे समीप ही जब इतनी लुटती सुन्दरता मृदु सुवास।
इसकी क्या तुझको खबर नहीं दे गई अरे! चल कर बतास।
चल उठ तू भी आनन्द लूट! भर भर जीवन में नव मिठास—
हँस-हँस फूलों सा मधुर हास।
मानव! तू क्यों इतना उदास ?



पखड़ियों के पख फूल फैला कर कहते—
"उड़ जाएँगे जहाँ हमारे प्यारे रहते"

किन्तु सुरभि ने कहा "बुलाये लाती हूँ मैं—
धीरज रक्खो अभी लौट कर आती हूँ मैं।"
पर वह प्रिय की छवि देख कर, वहीं मुग्ध हो रम रही।
पथ सुमन ताकते ही रहे, जब तक दम-में दम रही।



फूलों के कम्पित अधर खुले—
गाने को प्रिय का प्रेम-गान।
भावों की घनता से न शब्द
निकले भ्रमरों ने लिया जान।
'भन भन कर गाने लगे भ्रमर—
फूलों का वाञ्छित प्रेम-राग।
जी खोल लुटाया फूलों ने—
भ्रमरों को अपना भी पराग।



कहाँ से लाऊँ ऐसा फूल ?
तेरे लिए कहाँ से प्यारे! लाऊँ ऐसा फूल ?
जो न कभी मुरझाने पाये—
जिसकी गन्ध न जाने पाये—
भ्रमर न जिसे लुभाने पाये—
जिसे न भूल समीर छू सके, पड़े न जिस पर धूल •
अनोखा कहाँ मिले वह फूल।

यह चिन्ता दे रही शूल है—
पर यह मेरी बड़ी भूल है।
यह तो केवल प्रेम-फूल है—
हृदय-थाल में रख कर लाई, लो [illegible]।
चरण में अर्पित है [illegible]।



फूल

बैठ फूल-कुँज में लिखूँगा फूल के ही गीत—
सचमुच फूल सा न कोई हमें प्यारा है।
छवि का विकास जैसा होता इसमें है, वैसा—
मिलता न और कहीं ढूँढ जग हारा है।
तन-मन प्राण सभी इसके सुकोमल हैं—
बहती इसी के उर में ही रस धारा है।
फूल-सी अँगुलियाँ हों तो भी नहीं तोड़ो इसे—
चोट लगने से डरे, काँपता विचारा है॥

आज ही तो आँख इसकी है खुली डाली पर—
अभी लाज भरी दृष्टि भी न कहीं डा
चन्द्र किरणों ने अभी इसको छुआ भी
देखी नहीं जी भर प्रभात की भी
शीतल समीर का न स्वाद अभी
बजते सुनी की मृदु
मधु पात्र अभी
सोचो कोई

भट्टाईस

तोड़ना तुम्हें हो इष्ट, तोड़ना तो उस काल—
जब मधुपों ने मधु लूट लिया सारा हो।
म्लान मुख देख के न पास भी फटकते हों—
मिलता न कोई जब इसको सहारा हो।
सिर धुनता हो पल्लवों से फोड़ने के लिए—
खो के सुध-बुध जब बावला विचारा हो।
पर अभी मेरे सामने न तुम तोड़ो इसे—
कौन जाने फूल-सा किसी का कोई प्यारा हो ?

तोड़ लिया तुमने न मेरा कुछ माना कहा—
भाग जाओ निठुर ! दया न तुम्हें आयेगी।
सूनी पल्लवों की सेज बिलखा करेगी हाय !
बुलबुल फूल के न गीत अब गायेगी।
पतिआयेगी न भोली लतिका किसी को अब—
खिली हुई चाँदनी न मन को लुभायेगी।
देखना ! तुम्हारे इस क्रूर व्यवहार से ही—
छवि मर जायेगी, सुगन्ध उड़ जायेगी।



वन्य-कुसुम



विश्व की विकट वञ्चना देख-
कुसुम क्या वन में किया निवास ?
भाग आये हो अथवा यहाँ-
चुरा कर के प्रिय का मृदु-हास ?

"ढूँढ़ लेगा जो कोई हमें-
उसे ही देंगे मधु भरपूर" ।
कुसुम क्या यही हृदय में सोच-
छिपे हो आकर के अति दूर ?

कुसुम से कोमल हैं प्राणेश-
किन्तु मानस है वज्र कठोर !
आह ! क्या सह न सके यह दुःख-
इसी से निकल पड़े इस ओर ?

नैवेद्य

देख लतिका पर तुमको खिला,
यही होता है मन में भान-
खोज कर देख रहीं दृग कुसुम-
भाव क्या यह भी मन्द-विलास ?

सुमन-सुन्दरी यहाँ था भौंह-
झिलमिली नव पल्लव की ओट।
न पूछो आप लता की बात-
बिकी-सी जाती है बिन मोल।

शान्त होकर के अपना लिया-
सौरभित व्यजन-लता ने हाथ।
हिल रहा मन्द-मन्द है यही-
मलय-मारुत झोंकों के साथ।

क्रूर, निर्मम काँटों में कुसुम !
तुम्हें विधि ने क्यों दिया निवास ?
यहीं कोमल के साथ कठोर-
देखने की क्या थी अभिलाष ?

"विश्व की निष्ठुरता कर सके-
न हम पर और अधिक उपहास"
सोच कर क्या पहिले से यही-
कुसुम काँटों में किया निवास ?

प्रणय-बन्दी की-सी क्या दशा-
दिखाने का यह किया प्रयास!
बता दो हमको अपना ज्ञान-
कुसुम! अच्छा न अधिक परिहास।

तुम्हारे श्वेत रंग को देख-
कुसुम होता है यही विचार
फूट क्या अन्तरतर से पड़ा-
स्वच्छता का सुन्दर संसार?

तुम्हारा पीत रंग सविशेष-
हृदय में उपजाता यह भाव।
देख मधुपों का मुरली प्रेम,
किया क्या पीताम्बर से चाव?

देख कर लाल रंग में तुम्हें-
कल्पना कहती है यह बात।
छिपाये छिप न सका अनुराग-
अन्त, अज्ञात हो गया ज्ञात।

कुसुम! आकर क्या नभ में चन्द्र!
तुम्हारा ही करता है प्यार!
न जाने क्या देता है तुम्हें-
गगन से कर अनेक संचार!

गूँथ कर क्या चाँदी के तार,
कुसुम देता है यह सन्देश।
"पकड़ कर चढ़ आओ तुम इन्हें–
दिखायें तुम्हें प्रेम का देश।"

कुसुम! आओ चढ़ जाओ वहाँ–
किन्तु जाना मत मुझको भूल।
चन्द्र से कह देना तुम यही–
'वियोगी पर मत फेंके शूल'।



कुसुम

सलोनी आँखों से हे कुसुम !
किसे तकते हो बारम्बार ।
ढूँढते क्या अपना-सा हृदय—
सरल सुन्दर सब विधि सुकुमार !
स्वप्न में देखा होगा कुसुम !
अहा ! तुमने सुन्दर-ससार ।
उसी को फिर लखने की चाह—
कर रही क्या व्याकुल इस बार ?
तुम्हारे अन्तराल में कुसुम ?
छिपा था जो प्रियतम चित चोर ।
निकल वह गया, उसी को आज—
खोजते हो क्या चारों ओर ?

पवन से जब प्रेरित हो पत्र—
कुसुम! करता तुम पर आघात।
लगाता कोई प्रेमी चपत—
हमें होता तब ऐसा ज्ञात।
पत्र-पट का मृदु घूँघट डाल—
बनाती पवन सखी या ओट।
लजती सुमन सुन्दरी बाल—
न दे कोई नयनों की चोट।
पोंछती लता बढ़ा कर हाथ—
प्रेम से या अपना शृङ्गार।
धूल पड़ने से उसकी प्रभा—
रहे रक्षित हों भले प्रकार।
लता के अलकों में या फूल—
किसी ने गूँथा कर के प्यार।
किन्तु वह उसको भाया नहीं—
इसी से अब क्या रही उतार?
देख कर अमल ओस के बूंद—
कुसुम! तुम पर बिखरे चुपचाप—,
किसी के सजल नयन की याद—
हमें आ जाती अपने आप।

नैवेद्य

✿++✿++✿

सुरभि से होकर के या मस्त—
कुसुम ! तुम पर कर प्रकट दुलार !
पिन्हाया दिग्वधुओं ने तुम्हें—
मोतियों का यह मञ्जुल-हार ।
रात भर या फिर तुमने कुसुम !
किया प्रियतम होने का यत्न ।
झलकते श्रम-सीकर हैं वही—
नहीं हैं मनहर-मुक्ता रत्न ।
सुधाकर ने धोया या तुम्हें—
सुखद अपना सम्बन्ध विचार ।
'गगन में वह' भू पर तुम एक—
कुसुम हो प्रियतम की उनहार ॥
खेलने आये हैं या खेल—
तारिकाओं के कोमल बाल ।
उषा की मृदु लाली में कुसुम !
चलो ! खेलो हो विश्व निहाल ।
विधुन्तुद के भय से भयभीत—
हुआ विधु का या कम्पित हाथ—
कमण्डल से अमृत के बूँद—
झर पड़े अहा ! एक ही साथ ।

सूँघ नासा-रन्ध्रों की कुसुम
तुम्हारी मन्द-मधुर निश्वास।
दिया था सदय प्रकृति ने दान,
अधर-पल्लव पर हिम-जल-हास।
कुसुम! तुम पर जब आकर भ्रमर—
बैठ कर भरता है गुंजार।
कुटिलता ने तब मानो किया—
सरलता पर सदर्प अधिकार।
सरल मुख में या चपल नयन—
भरी जिसमें तृष्णा की प्यास।
विश्व का यह कैसा व्यापार—
सुधा में हाय! गरल का वास।
कुसुम नाला के लहरा रहे।
कहो या कुञ्चित काले केश।
तिमिर करने आया है प्यार—
भ्रमर का अथवा धर के वेश।
कुसुम या तुमने लिया बिठाल—
जान कर अलि को श्याम स्वरूप।
'मधुर-गुञ्जन, मुरली-रव मान,
पीत पट पीत रेख अनुरूप।

नैवेद्य

कुसुम सित, और भ्रमर है असित,
लहलहे नूतन पल्लव लाल।
देख गङ्गा यमुना का मेल,
रही थामी, गलबाहीं डाल।
लता की हँसी सदृश तुम कुसुम!
तुम्हें करता मैं कितना प्यार।
तुम्हारी एक प्रेम की दृष्टि—
भुला देती है सब संसार।
डाल पर भोगो नित सुख-स्वर्ग—
चाँदनी में कर के सुस्नान।
और फिर कुसुम! प्रेम से सुनो।
सरस पत्तों का मर्मर गान॥

कण्टक

(१)

उस दिन गुलाब के नवल कुञ्ज से
चली एक सुन्दरी निकल
"मानिनी रुको क्षणभर
कहता ही रहा हाय ! प्रेमिक विह्वल"
तब मैंने ही था रोक लिया
उलझा करके चञ्चल अञ्चल ।
प्रेमी ने कहा "धन्य कण्टक !
जीवन तेरा सब भाँति सफल" ।

(२)

प्यारी के मुख की श्वास सुरभि,
चोरी कर इठलाते न फूल ।
तो प्रात पवन झकझोर उन्हें—
क्यों भरता आँखों बीच धूल ।
बिम्बाफल भी यदि अधरों सी—
लाली न दिखाते कहीं भूल—
शुक चञ्चु विद्ध तो क्यों करते-
इससे तो अच्छे हमीं शूल ।

(५)

फूलों का साथी देख हमें
कुछ कहते "विधि से हुई भूल"।
कुछ कहते "ये उनके रक्षक
मत फेंको विधि पर व्यर्थ धूल"।
यह किन्तु किसी को ज्ञात नहीं
हम मनु के भेजे गुप्त शूल—
परिचय होने पाये, जग में—
कितने हैं कोमल हृदय फूल ?

(६)

मेरे सहवासी फूलों को
जब लोग तोड़ते हैं आ कर—
ये किसी वीर विजयी उर में
माला पहनाएँगे जा कर।
तब हर्ष मुझे कितना होता—
निद्रा होती तो चिल्ला कर—
कहता कि ले चलो मुझ को भी
होऊँ कृतार्थ दर्शन पा कर।

(३)

दुष्यन्त नृपति से विदा माँग
चल दीं सखियाँ जब कुटी ओर—
विरहिणि शकुन्तला ठिठकी-सी—
कुछ पद चल कर प्रिय-छवि विभोर
"बोली पगतल में लगा हाय !
मेरे यह कुश कण्टक कठोर"
अवलम्ब इस तरह ले मेरा
देखा फिर से निज चित्त चोर।

(४)

है व्यर्थ नहीं कुछ भी भू पर
सब म है थोडा बहुत सार।
मुझको ही देखो करते हैं
यद्यपि सब मेरा तिरस्कार।
पर जब वियोग की कृशता का
वर्णन कर कवि पाते न पार—
तब 'सूख हुआ काँटा शरीर'
देता मैं ही उनको विचार।

(५)

फूलों का साथी देख हमें
कुछ कहते "विधि से हुई भूल"।
कुछ कहते "ये उनके रक्षक
मत फेंको विधि पर व्यर्थ धूल"।
यह किन्तु किसी को ज्ञात नहीं
हम प्रभु के भेजे हुए शूल—
परिचय देने आये, जग में—
कितने हैं कोमल हृदय फूल ?

(६)

मेरे सहवासी फूलों को
जब लोग तोड़ते हैं था कर—
ये किसी वीर विजयी उर में
माला पहनाएँगे जा कर।
तब हर्ष मुझे कितना होता—
जिह्वा होती तो चिल्ला कर—
कहता कि ले चलो मुझ को भी
होऊँ कृतार्थ दर्शन पा कर।

एक पत्ती की कामना



प्रमदाएँ जब घर जातीं,
फूलों से अंचल भर कर।

तब मैं रोया करती हूँ—
अपने अभाग पर, जीभर।

सोचा करती हूँ मन में—
मैं भी होती यदि सुन्दर।

तो आदर मेरा होता—
चढ़ती प्रियतम के पद पर।



शुष्क-पत्र

विश्व विजनता के विषाद से,
शुष्क हृदय के-से उद्गार।
रोते हुए प्रेम के कण-से,
भग्न हृदय वीणा के तार।
हरे भरे नव वर्तमान के,
आह! कौन तुम जीर्ण अतीत!
छूट गया कैसे सुख-सम्बल,
आश्रय-रहित हुए क्यों मीत!
कहो! कौन तुम श्रान्त पथिक से,
पड़े हुए तरु के नीचे।
किन स्वप्नों की स्वर्ण सरित में-
बहे जा रहे दृग मींचे?
विश्व मञ्च पर नियति-नटी-कृत,
परिवर्तन के अभिनय-से।
कुशित यत्न के काप-वलय-से,
अनय-त्रस्त मूर्च्छित नय-से।

दूर कर दिये चिर-संशय से,
मुग्ध हृदय के विस्मय से।
नश्वरता के दृढ निश्चय-से,
अपराजय-से, अविनय से।
कवियो के नैराश्य भाव-से,
वृद्धावस्था के धन से।
फटे हुए माँ के अञ्चल से,
प्रेमी के निकले मन से।
परित्यक्ता के प्रिय शृङ्गार-से,
तुम भू पर बिखरे हो मौन।
निठुर विश्व है यहाँ तुम्हारी,
बोलो! व्यथा सुनेगा कौन?
प्रकृति काव्य के जीर्ण पृष्ठ-से,
धूल धूसरित पीले गात।
मुझे बता दो अये! दया कर—
संसृति के रहस्य की बात।
तरुवर के परित्यक्त-व्यजन-से,
वन्ध धरित्री के लघु त्राण।
विश्व-वेदना के चिर सहचर,
अविदित-से जग के कल्याण।

अपने छोटे-से जीवन के,
पूरे कर के सारे काम।
अब निश्चिन्त भाव से तुम क्या—
भू पर करते हो विश्राम ?

शीत, घाम झंझा-झोंको के—
प्रमुदित हो सहते आघात।
वही सहनशीलता दुःख में
मुझे सिखा दो ना, हे तात !

सखे ! सदय हो मुझे बता दो—
सुख, दुःखमय निज मन के भेद।
ऊँचे से नीचे गिरने का—
क्या है तुम्हें नहीं कुछ खेद ?

"नहीं, नहीं यह बात न कुछ भी—
मैं तो हूँ प्रसन्न इस काल।
जन्म-भूमि की पावन पद-रज-
पा कर कौन न हुआ निहाल ?"



आश्वासन



पीला पत्ता गिरा भूमि पर
और उसे ले उड़ा समीर
कम्पित गात हृदय उद्वेलित
बोली लतिका वचन अधीर।

"हाय! अकेला बिछुड़ा जाता,
कोई नहीं उसे लौटाता।
अरे! यही क्या जग का नाता?

रह रह कर मेरे मानस में
होती है अति दारुण पीर।
पीला पत्ता गिरा भूमि पर—
और उसे ले उड़ा समीर ॥

कौन जानता उसका पथ है
कितने कष्टों से भरपूर?
यह भी नहीं जानता कोई
वह समीप है अथवा दूर?

छियालीस

सन-सन करता क्रुद्ध प्रभजन
छीन ले गया वह मेरा धन
रही देखती म पत्थर बन—
सुमन धारिणी कहो न मुझसे
मैं तो हूँ अभागिनी क्रूर।
किसे ज्ञात है उसका पथ है—
कितने कष्टों से भरपूर"।

फर-फर कर के और दूसरे—
पत्ते बोल उठे तत्काल।
"निज भाई का पता लगाने
जाते हैं हम तज कर डाल।
जीवन है तो फिर आयेंगे—
बिछुडा बन्धु खोज लायेंगे
या कि यहीं आश्रय पायेंगे—
जहाँ निराश्रय को भी आश्रय—
भू माता देती सब काल।"
फर-फर कर के और दूसरे—
पत्ते बोल उठे तत्काल॥



वसंत का प्रभात

दक्षिण समीर यह कैसा
दक्षिण-नायक-सा आता।
परिहास लताओं से कर—
पल्लव अञ्चल सरकाता।

आकर बसन्त फूलों को—
क्षण में मधुमय करता है।
या छन्दों के प्यालों में—
कवि भावोदधि भरता है।

क्या जाने क्या कहने को—
कलियों ने है मुँह खोला।
लज्जा वश नवल-वधू-सा—
पर गया न उनसे बोला।

किसलय पर किसलय रीझे—
जो बजा रहे हैं ताली।
हाँ, समझ गया मधुपों ने—
छेड़ी है तान निराली।

कोयल रसाल पर बैठी—
जो गीत एक ही गाती।
क्या और न कोई उसको
है चीज दूसरी आती ?

यों वृक्ष पुष्प बरसाते
जैसे मेघों से पानी।
मानो कठोर वसुधा को—
कोमल करने की ठानी।

आरसी बना सरसी की—
पद्मिनी निरखती छवि है।
दी खबर सखी ऊषा ने—
आता तव प्रियतम रवि है।

फूलों से धरती ढक दी
वृक्षों ने होड़ लगा कर।
मधु श्री के मृदु-चरणों को—
जिससे हो कष्ट न आ कर—

लो! सुरभि सुमन माला को-
ले गया समीर उड़ा कर।
कुछ उससे बना न करते—
रह गया हाय! मुँह बाकर?

विकसित गुलाब से ढलते—
शबनम के सुन्दर मोती।
या उषा सुन्दरी अपने
रक्तिम कपोल है धोती।

उन्मद हो यौवन मद से
बेलें वृक्षों पर चढ़तीं।
वे सुमन भेंट देते हैं—
नित नई रगतें बढ़तीं।

मधु मक्खी, कवि दोनों ही—
सुमनों से रस हैं लेते।
उसका सञ्चित लुटता है—
ये आप विश्व को देते।

सरसों का पीत वसन है
मधुपों की मुरली प्यारी
माधव को याद दिलाता—
यह माधव मास सुखारी।



भाव

जितना छिपाते उतना ही खुलते हो तुम,
खाली करते हैं तो अधिक भर आते हो।
जब तुम एक शृङ्खला में बँध जाते तब–
चिन्ता से बँधे अनेक जनों को छुड़ाते हो।
बाँकपन दिखला लुभाते हो सरल चित्त
और कुटिलों को तुम्हीं सरल बनाते हो।
मोल, तोल, भाव, क्या है कोई पूछता न कभी–
अतुल, अमोल तो भी 'भाव' कहलाते हो।

सोचने के योग्य न हो तो, भी तुम्हें सोचते हैं–
अगम हो किन्तु कवि के समीप जाते हो।
राग युक्त हो कर विराग उपजाते तुम्हीं–
सूक्ष्म हो के जगत में गौरव बढ़ाते हो।

चित्त चोर से भी तुम मित्रता कराते सदा–
आँख माच कर प्राणधन को दिखाते हो।
कैसा अचरज है सुधा से परिपूरित हो–
भाव तुम मानस को मोहित बनाते हो?
तुम्हीं मुख चन्द्र के खिलाते पास दृग-कंज
और दृग कंज में से सलिल बहाते हो।
तुम्हीं प्राणप्यारे की दिखाके मन्द-मन्द चाल
मन में अमद-मंजु-मोद उपजाते हो।
तुम्हीं कर कंज से कराते हो कठोर काम–
सुन्दर सनेह में भी रूखता दिखाते हो।
सुभग सलोने रूप मे मिठास लाते तुम्हीं–
प्रेमियों के कटु बोल मधुर बनाते हो।
सर्द आह से भी मृदु गात हो जलाते तुम्हीं–
अश्रु जल से भी प्रेम आग सुलगाते हो।
मरो को भी अमर बनाते नव जीवन दे–
मौन हो परन्तु बात मन की बताते हो।
ऊंचा हो उठाते उर-नल मे निकल हमें–
पुरातन होके सृष्टि नूतन रचाते हो।
लालची न तो भी हो सुवर्ण अपनाते तुम–
यति गण युक्त भी रसिकता दिखाते हो।



भावुक से !



यदि स्पर्श पर तुम मरते हो, तो फूलों पर मर जाओ !
एक बार छू कर कोमल तन वह सुख पाओ तर जाओ !
कलित-कण्ठ के यदि प्रेमी हो, तो वीणा की सुमधुर तान—
सुन कर खो बैठो अपने को, पिकी प्रवीणा का कल गान !

तुम्हें लुभा लेते यदि बरबश कनक अधर शोभाशाली—
तो जा कर देखो नभ-तल की, अरुण किरण रञ्जित-लाली।
हृदय हिला देता हिल हिल कर यदि धानी अचल का छोर—
तो देखो मस्ती से हिलती डुलती उस लतिका की ओर।

नाच-रङ्ग से पड़ जाता है यदि मन का बन्धन ढीला—
सरल तरङ्गावलि की देखो, तो फिर ललित लास्य-लीला।
कर लेती है घर यदि उर में उसकी मुख छवि आ अनजान-
तो शारदी निशा में शशि का क्षण भर करो अमी-रस पान।

यदि नयनों की चपल पुतलियाँ कर देती हैं अधिक अधीर—
तो कमलों में जाकर देखो चपल चित्त भ्रमरों की भीर।
यदि प्यारे लगते अलकों में गुम्फित मुक्ताओं के हार—
तो देखो चाँदनी जहाँ पर मिलती तम से बाँह पसार।

यदि बहका देता है पथ से, धवल-हास का विमल विलास—
तो देखो अपलक नयनों से सरिताओं का फेनिल-हास।
फिर यदि उमड़े कभी हृदय में प्रकृति प्रेम का पारावार—
तो भावुक! तुम अपना उस पर तन, मन, धन सब देना धार।



मन

कहना न मानता किसी का किसी भाँति से भी—
दूसरों के उर में बनाता जा सदन है।
उलझन होती तुझे सुलझाने से ही और—
कैसे कहें कैसी फिर तेरी उलझन है?
एक क्षण को भी क्षीण होके बैठता न कभी—
चाहता जहाँ है वहीं करता गमन है।
ले के तुला तोलें तो छटाँक भर का भी नहीं—
प्रबल प्रभाव से प्रसिद्ध हुआ 'मन' है।

   

कौड़ियों के मोल बिकता तू प्रेम-हाट में है—
कौन जाने कैसी कुछ अजब लगन है।
घन केश देख के मयूर बनता है और—
बनता चकोर देख चन्द्र-सा बदन है।
उगता जहाँ है वहीं जाता बार बार तू है—
हानि में ही लाभ मान रहता मगन है।
तेरी प्रीति रीति में कहाँ से लाभ होवे जब—
दो मन मिले से बनता तू एक मन है?



चौपन

मनकी बात

कहूँ मैं किससे मन की बात ?
दुनियाँ की असली सूरत को देख चुका दृग खोल—
अब न हमारे सम्मुख उसका शेष रहा कुछ मोल ?
हो गया गुप्त भेद सब ज्ञात।
कहूँ मैं किससे मन की बात ?

जग का है सौन्दर्य अधूरा अस्थिरता का रूप—
क्षण भर की छाया में दारुण छिपी हुई है धूप—
योग में है वियोग विख्यात।
कहूँ मैं किससे मन की बात ?

कुहुकमयी आशा के पट को खींचा कितनी बार—
किन्तु कहाँ ? सुख कहाँ ? हृदय से निकली यही पुकार

भटकता फिरा व्यर्थ दिन रात ।
कहूँ मैं किससे मन की बात ?

पर अब प्रियतम के चरणों को छू चुके हैं प्राण ।
जहाँ विश्व का जमा हुआ है जा कर सब कल्याण—

नहीं है जहाँ घात प्रतिघात ।
कहूँ मैं किससे मन की बात ?

जहाँ अनन्त रूप का सागर है ले रहा हिलोर—
कमी नहीं है जहाँ पूर्णता विहँस रही सब ओर—

मधुरता जहाँ हुई है मात ।
कहूँ मैं किससे मन की बात ?



तम

सन्ध्या का समय समीप जान,
सुन्दरियाँ करती हैं शृंगार,
एकान्त देख आओ प्रियतम।
आओ प्रियतम!! उठतीं पुकार।
उनका यह सुन आह्वान मधुर–
मैं वायु वेग ही से आया,
ऐसे मैं पहले प्रगट हुआ–
पर यह सब थी भ्रम की माया।
वे निज प्रियतम को बुला रहीं–
मैंने भ्रम से निज को जाना।
पर यह भ्रम था कितना सुन्दर–
क्या यह भी होगा बतलाना?
पर अब तो मैं आ ही पहुँचा–
आगत का अब सत्कार करो
कुछ अपनी कहो सुनो मेरी
कुछ हिलो मिलो कुछ प्यार करो।

   

नैवेद्य

यह मत समझो इस जगती में
मेरी है कुछ भी चाह नहीं
लज्जाशीला नव वधुएँ क्या
तकतीं हैं मेरी राह नहीं ?
घूँघट घन में मुख चन्द्र छिपा—
निष्प्रभ कर दीपक मालाएँ
प्रियतम के पहले प्रियतम को—
चाहा करतीं वे बालाएँ।
यह लो उनके प्रियतम आये—
फूलों की माला ले कर में।
कँप उठे नवोढाओं के उर—
ग्रीवा छूते ही क्षण भर में।
रह रह कर मुँह फेरना उधर—
फिर इधर शपथ दे हठ करना,
यह सब कुछ है कितना सुन्दर—
मधुमय मानव सुख का झरना।
ये दृश्य सभी देखे मैंने—
रवि शशि जिनको तरसा करते,
फिर भी कुछ अज्ञानी मुझ पर—
दुर्वचनों की बरसा करते।

नैवेद्य

राधा ने जब दृग बन्द किये–
तब छिपे कहाँ माधव जाकर,
वह मैं ही तम था भाग्यवान–
वे छिपे अहा ! जिसमें आकर।
वह आँख मिचौनी की क्रीड़ा–
मुझसे ही सरस हुई इतनी,
यदि मैं न कहीं होता तो फिर–
दुनियाँ वञ्चित रहती कितनी ?
कितनी कामिनियों ने मेरा
आश्रय ले कर अभिसार किया–
मैंने उनकी लज्जा रक्खी–
आश्रित का सदा विचार किया।
वह वन्य मृगी उसके पीछे–
भागा जाता ले वधिक बाण,
है इधर शाम होने आई–
सङ्कट में उसके उधर प्राण।
मैंने अपना काला अञ्चल–
अम्बर से भू तक दिया तान,
देखना वधिक का व्यर्थ किया–
यों दीन मृगी की बची जान।

  

मेरा यह काला रंग देख-
हँसते वे गोरे रंग वाले।
हैं श्वेत रंग के रूपान्तर-
लोहित नीले, पीले, काले,
विज्ञान यही बतलाता है-
पर उन्हें भला यह ज्ञान कहाँ?
काली आँखों की पुतली का-
होता है कितना मान यहाँ?
काली कोयल, यमुना काली-
यशुदा के थे मोहन काले,
सच कहो कि कितने प्रिय लगते-
पावस के घिरते घन काले?
अन्याय पाप में रत रहते-
उनके मुँह में कालिख लगती।
कालिमा न जो होती उनसे-
परिचय पाती कैसे जगती?
इस लिए कालिमा तो गुण है-
उसको अवगुण क्यों मान लिया-
मैं काला हूं तो हूँ अच्छा-
अब तो तुमने यह जान लिया।

वसुधा क्या अम्बर में शशि को—
गोदी में मैं करता क्रीडा,
पीयूष सुधाकर का पीता—
हूँ अमर मुझे कब कुछ पीडा ?
मेरा अस्तित्व मिटाने को—
होंगे न प्रदीप समर्थ यहाँ,
मैं तो उनके ही पास रहा—
वे मुझे खोजते व्यर्थ कहाँ ?
चाँदनी चार दिन की होती—
फिर तो भीषण तम ही तम है,
मेरा दृष्टान्त मदान्धों को—
जागृति के हित यह अनुपम है।
मैं आता हूँ तो फिर सब को—
समता का सबक सिखाता हूँ,
यह छोटा है यह बडा भेद—
भूतल से सभी भगाता हूँ।
हाँ-तम, तामस, तिमिरान्धकार—
मेरे कितने ही नाम पडे,
है प्रकृति विवश्ना, वस्त्र बुनूँ—
जाने दो कवि हैं काम बडे।

पूर्ण चन्द्र से

(१)

पूर्ण चन्द्र! आज तुम उडु गण मण्डली में
हो कर अधीश जैसे यश चमका रहे।
वैसे सब देशों में समुत्तम था भारत ये—
कहो क्या इसी की याद तो न हो दिला रहे?
अथवा प्रकाश-कर-निकर विदार तम
स्वावलम्ब का हो पाठ हमको पढा रहे?
मौन क्यों हुए हो बोलो? कुछ तो बताओ प्यारे!
बडी देर से हैं हम तुमको बुला रहे?

(२)

स्वर्ण युग देखा है हमारा ओ मयङ्क तू ने!
तुझसे सुयश जब सौगुना हमारा था।
त्योरियों के साथ तलवार खिंचती थी अहा!
प्राण से अधिक जब मान हमें प्यारा था।

लोटती थी भूरि सुख सम्पदा चरण तले—
हाथ में हमारे जब सत्य का सहारा था।
प्रेम उर में था क्षेम नेम में विराज रहा—
चारों ओर फैला जब पुण्य का पसारा था।

(३)

राम की पवित्र पितृ-भक्ति को विलोक तूने—
होगा बरसाया प्यारे! खूब सुधा धार को?
फूले न गगन में समाये होगे चन्द्र तुम—
देख कर जानकी के विमल विचार को?
पार्थ का पराक्रम विलोक महाभारत में—
ज्योति मिस किया होगा प्रकट दुलार को!
बारबार मन में प्रताप को सराहा होगा—
एक ही के मारते थे जब वे हजार को!

(४)

बादलों में ढक लिया होगा मुख बिम्ब तूने
देखा होगा देश द्रोहियों के जब जाल को?
बाँधती थी जब परतन्त्रता स्वतन्त्रता को—
ठोका होगा हाय! तब तूने निज भाल को।
कायर कुचालियों पै दाँत पीसे होंगे तू ने—
सोच बीर बशजों के गौरव विशाल को!

पूर्ण चन्द्र से

(१)

पूर्ण चन्द्र ! आज तुम उडु गण मण्डली में
हो कर अधीश जैसे यश चमका रहे।
वैसे सब देशों में समुत्तम था भारत ये—
कहो क्या इसी की याद तो न हो दिला रहे ?
अथवा प्रकाश-कर-निकर विदार तम
स्वावलम्ब का हो पाठ हमको पढा रहे ?
मौन क्यों हुए हो बोलो ? कुछ तो बताओ प्यारे !
बडी देर से हैं हम तुमको बुला रहे ?

(२)

स्वर्ण युग देखा है हमारा ओ मयङ्क तू ने !
तुझसे सुयश जन सौगुना हमारा था।
त्योरियों के साथ तलवार खिंचती थी अहा !
प्राण से अधिक जब मान हमें प्यारा था।

लोटती थी भूरि सुख सम्पदा चरण तले—
हाथ में हमारे जब सत्य का सहारा था।
प्रेम उर मे था क्षेम नेम मे विराज रहा—
चारों ओर फैला जब पुण्य का पसारा था।

(३)

राम की पवित्र पितृ भक्ति को विलोक तूने—
होगा बरसाया प्यारे! खूब सुधा धार को?
फूले न गगन में समाये होगे चन्द्र तुम—
देख कर जानकी के विमल विचार को?
पार्थ का पराक्रम विलोक महाभारत मे—
ज्योति मिस किया होगा प्रकट दुलार को!
बारबार मन मे प्रताप को सराहा होगा—
एक हो के मारते थे जब वे हजार को!

(४)

बादलो में ढक लिया होगा मुख बिम्ब तूने
देखा होगा देश द्रोहियो के जब जाल को?
बाँधती थी जब परतन्त्रता स्वतन्त्रता को—
ठोका होगा हाय! तब तूने निज भाल को।
कायर कुचालियों पै दाँत पीसे होगे तू ने—
सोच बीर वशजों के गोरव विशाल को!

मन को अवश्य शोक ज्वाला में जलाया होगा—
प्यारे चन्द्र ! देख देख भारत के हाल को ?

(५)

शीघ्र ही सुना दे हमें सकट कहानी पूरी—
भाग्य को हमारे इस भाँति कौन रो गया ?
किसने चुराये हैं हमारे सुख साज सभी—
सुधा क्षेत्र में है कौन विष-बीज बो गया ?
हर्ष हरियाली से यहाँ की धरा हँसती थी—
उसे दुख सागर में कौन है डुबो गया ?
कुछ तो बता दे निशिनाथ ? बड़ी देर हुई—
गौरव का हीरक हमारा कहाँ खो गया ?



चाँदनी

ऐ निशि के निस्पन्द राज्य की श्री-
शशि की मोहक मुसकान!
ऐ मानव कुल के स्वप्नों की-
फेनोज्ज्वल शय्या छविमान!

ऐ अनन्त की-सी पुण्य स्मृति-
स्वर्गङ्गा की सरस हिलोर।
ऐ मङ्गल कामना स्वर्ग की-
छाजाओ तुम चारों ओर।

ऐ उज्ज्वल भावों की काया-
विश्व प्रेममय मृदु समता।
सित आभामय प्रकृति प्रिया के-
उत्तरीय की उत्तमता!

५

ऐ निद्रा के मधुर काव्य की–
नीरवतामय मीठी तान!
चन्द्र देव के भू चुम्बन की–
शेष एक सुन्दर पहिचान।

ऐ विकसित फूलों की सुषमा–
क्षीरोदधि-बाला सुकुमार।
रजत रश्मियों से भू-नभ का–
जोड़ो हाँ! सम्बन्ध उदार।

ऐ [रहस्यमय नभो-देश की–
प्रिय सन्देश-वाहिका मौन!
ज्योतिर्मय नयना से देखो–
क्या भू पर करता है कौन?

ऐ रसमयी रसा के उर से–
सहसा निकली रस की धार।
राज हंस के सित पत्रों सी–
पावन दो अब प्रभा पसार।

ऐ ऋषियों की कलित-कीर्ति-सी–
शुद्ध सत्व गुण की मृदु वान।
- सुधा सिक्त निज कर फैला कर–
कर दो ना! तम का अवमान।

ऐ तुलसी की शान्त-सुधा रस-
प्लावित मूर्तिमती कविता !
तेरे हर्षोज्ज्वल प्रकाश के आगे-
है लज्जित सविता।

ऐ दिन भर के पारतन्त्र्य, से-
मुग्ध नैश नभ की सुषमा।
आओ ! चमको विश्व हृदय में-
हे छवि की प्यारी उपमा !



तारे

अभिषेक किसका सजाती रजनी क्यों साज ?
फैल रही आभा कैसी हीरक अमल है ।
रजत रचित कलाधर का कलश चारु—
कौमुदी किरणजाल का पवित्र जल है ।
अङ्क में न उसके कलङ्क कालिमा है किन्तु—
पड़ा नील कमल का उतराता दल है ।
तारे नहीं, जगमग होवे हैं प्रदीप पुंज—
सुषमा निकुंज बना नभ का महल है ।

* * * *

है नील नभ-स्थल सागर—
बिखरे मोती से तारे ।
शशि राज हस सा बैठा—
चुगने की मुद्रा धारे ।



हँसी की एक रेखा

(१)

गगन अङ्क में बड़े चाव से—
चन्द्र विहँसता देख।
तेरे मधुर हास की उसमें—
समझ एक लघु रेख।

(२)

उछल उछल के मोद मनाता,
चाहक चित्त चकोर।
इकटक उसे देखते प्यारे!
हो जाता है भोर!

(३)

फिर विछोह-वेदना पिशाची—
करती है बेचैन।
थक जाते हैं रोते-रोते—
मुझ दुखिया के नैन।



उन्मुक्त

पनिहारिन

१

क्यों ही सुन्दरी ने घट बन्धन में बाँधा त्योंही—
प्रकट अचानक हुआ ये भाव मन से।
सुन्दरी सयानी सीखती है क्या मिलन मोद—
आज इस भाँति रज्जु-घट के मिलन से?
अथवा पूर्व जन्म का ही घट रज्जु वैर—
बाँध के चुकाती जिसे रज्जु है यतन से।
नहीं तो बताओ इन कोमल करों से कैसे—
होता ये कठोर काम ऐसे क्रूरपन से।

२

साथ ही हमारे मन में यों ध्यान आया फिर—
मायामय से विचित्र मोहनी की माया है।
चाहक को अपने सदैव ही सताया कभी—
भूल के भी करुणा का भाव न दिखाया है।
अलकों के जाल में फँसा के मन उलझाया—
नयन-शरों से तन वेध के दुखाया है।
अचरज क्या है घट का जो गला बाँधा गया—
सुन्दरी के हाथ सुखी होके कौन आया है?

३

घट ने निभाया प्रेम अपना फँसा के गला—
जाके सब हाल मित्र जल को सुनाया है।
सुन्दरी को छूके घट आया जान, जल ने भी—
सादर सप्रेम उर धाम में बिठाया है।
किन्तु उन दोनों प्रेमियों का अनुराग भरा—
मंजुल मिलन रज्जु को न नेक भाया है।
मानो यही जान के विछोह-वेदना से घट—
जल में समाया, जल घट में समाया है।

४

कोई कहता है जल मित्र ने दिखाया प्रेम—
घर छोड़ अपना घड़े में भर आया है।
कोई कहता है जब घट सुन्दरी ने छुआ—
रिक्तता का दोष तब रज्जु ने मिटाया है।
कोई कहता है श्रम-फल पाया घट ने है—
किन्तु भाव मन को हमारे यही भाया है।
सुन्दरी का चन्द्रमुख देख के लुभाया जल—
आया खिंच ऊपर, विलम्ब न लगाया है।

दिन स्वर्ण लुटाता है आकर,
चाँदी बरसाती निशि लाकर।
पर तुम्हे न इनसे काम सखी!
प्रियतम बिन कब आराम सखी!

गिरि की गृह गलियाँ छोड चुकीं,
बाधा बन्धन सब तोड चुकीं
अब जा अगाध मे मिलो प्रिए!
हाथों में फेनिल फूल लिए।

मैं भी तुम-सा ही मिलनातुर—
चल पड़ूँ, लगूँ प्रियतम के उर।
फिर मेरापन सब बह जाये।
प्रियतम ही प्रियतम रह जाये॥



झरना

जग कहता 'पाषाण हृदय' हो !
इस कलक के धोने को।
झरने के मिस प्रगट दिखाता—
पर्वत अपने रोने को।

चेतन होता तो मैं आता अहा !
देश अपने के काम।
झरना, नहीं, इसी चिन्ता से—
अश्रु बहाता गिरि अविराम।

भू-माता के प्रिय-चरणों पर—
रख न सका यह सिर पल भर।
झरना क्यों ? इस दुख से गिरि ही—
टरकाता चख जल भर भर॥

सीखे थे पहिली उमग में—
गिरि ने कुछ गायन मनहर।
पर अब केवल याद एक है—
वह भी निर्झर का 'झर-झर'।

है अनन्त वैभव निसर्ग का—
अन्त नहीं जिसका आता।
झरना कथ ! प्रत्यक्ष रूप से—
गिरि यह सब को दिखलाता।

काव्य, प्रवाह युक्त है गिरि का—
जिसकी 'ध्वनि' ही है कल कल।
भाव विमल है, क्रम अविचल है
गति है बाँकी और सरल।

जग हित कर्म्म योग का जिसमें,
भर कर के अक्षय सन्देश।
बार बार भेजा करता है—
गिरिवर वह यह है उपदेश।

गिरि ने जिसे किया था बन्दी—
क्या जाने कब ? किस छल से ?
वही छूट कर क़ैदी भागा जाता है
अब कल बल से।

कब क्या माँगा था, कब की थी—
गिरि माँ ने देने में देर ?
कब मागे थे हे चञ्चल शिशु ?
तुम यों क्रन्दन कर मुँह फेर।

निर्मम प्रेमी हो तुम गिरि को—
आह ! छोड़ कर जाते हो।
पूँछ रहा वह कब आओगे—
'कल-कल' कह बहकाते हो।

अथवा तुम पागल हो कोई—
जो अपनी ही कहते हो।
ऊँचा नीचा नहीं देखते—
गिरते पड़ते बहते हो।

या सच्चे सैनिक हो गिरि के—
पीछे पाँव न धरते हो।
अन्धकार हो या प्रकाश हो—
तल से समर करते हो।

या फिर सुहृद्‍बन्धु हो, सबको—
यह शुभ सीख सिखाते हो।
'रोको नहीं दान धारा को
देने से ही पाते हो।'



प्रतिबिम्ब

व्योम और वसुधा की शोभा को करके परास्त पल में—
अब पाताल जीतने को क्या उतर रहे हो तुम जल में ?
किम्वा जल-देवी जल पट पर चित्राङ्कन है सीख रही ?
या मानस में तुम्हें बसा कर माँग प्रेम की भीख रही ?
दुनियावी दूषित आँखों की या पड़ गई कहीं छाया—
जो यों आप विशुद्ध वारि से धोते हो तुम निज काया ?
अथवा सब विधि हार गया विध जब तुम सा न बना पाया—
तब तुमने ही स्वयं सदय हो जल मिस निज को दिखलाया ?
या प्रतिबिम्ब देख कर अपना लगा रहे हो यह अनुमान—
'मेरी छवि में क्या जादू है ? जो सब मुझ पर देते जान।'
या कि पिघल कर प्रेमी-गण के हृदय हुए पानी-पानी—
इसी बहाने से अपने में तुमको रखने की ठानी।

"कैसे अहा! जलज बनते हैं प्रियतम के पद के उपमान"—
क्या यह पता लगाने ही को जल में पैठे हो मतिमान ?
खींच प्रेमियों के हृदयों को रहे खिचे-से तुम प्रतिपल—
आज खींच कर तुम्हें उसी का क्या बदला लेता है जल ?
रहे वियोग भरे हृदयों में तुम अपने प्रियतम के संग—
मिटा रहे क्या विरह-ताप अब शीतल जल से धोकर अंग ?
ऊब गये जग की हलचल से क्या इसलिए छिपे जल में—
बतलादो प्रतिबिम्ब ? बढ़ रहा विस्मय मेरा पल-पल में ?

   

प्रियतम से ही प्रकटित होकर प्रियतम में ही होते लीन—
भाग्य सूत्र सब काल तुम्हारा रहता प्रियतम के आधीन।
उठना और बैठना सब कुछ होता प्रियतम के ही साथ—
धन्य प्रेम प्रतिबिम्ब तुम्हारा! धन्य! तुम्हारी गौरव गाथ।



हिमालय

गिरिराज हिमालय अपना
क्या उन्नत भाल दिखाता ?
'माथा ऊँचा रखने का'
मानो है मन्त्र सिखाता ।
अथवा सुमेरु पर्वत ने—
जब गिरिपति इसे न माना।
तब यह ऊँचा हो उसको
नीचा चाहता दिखाना।
कमलों से युक्त सरोवर
कितने इस पर छवि छाते।
वे जोड़ पाणि पुष्कर को—
मानो हैं इसे रिझाते ?

कितने निर्झर झरते हैं
इस पर कोमल कल-कल से।
सुख मानो उमड चला है—
इसके दृढ अन्तस्तल से।
पहले गाया था शिव ने
जो राग सत्य का सुन्दर।
लय हुई मंजु ध्वनि उसकी—
हैं शेष प्रति ध्वनि निर्झर।
गिरिवर गहरी निद्रा में
सो गया अचानक थक कर।
हैं जगा रहे वैतालिक—
निर्झर भैरवी सुना कर !

ये स्वर्ण शृङ्ग हैं कैसे—
हिम से मण्डित अति सुन्दर।
मैले होने के डर से—
मानो ढाँके हो गिरिवर ?

या हेममयी लंका पर—
राघव का यश छाया हो।
या पीताम्बर पर हरि ने—
श्वेताम्बर फहराया हो।

कैसी फैली हैं इस पर—
ये सङ्ख्यातीत लताएँ।
हों मूर्तिमान ही मानों—
इसकी अमद शोभाएँ।

पुष्पाभरणों से उनकी
यों शोभा हुई निराली।
ज्यों हो सत्कवि की कविता—
रुचिरालंकारों वाली।

मलयानिल धीरे धीरे
आकर के उन्हें हिलाता।
मानो संयमित हमारी
इच्छाएँ मन विचलाता।

ये रंग विरंगे पक्षी—
बैठे उन पर हैं उड़ कर।
मानो रंगीन प्रलोभन—
आये हों मुझ पर जुड़ कर।

ये कान्तिमती औषधियाँ
इस पर प्रकाश फैलातीं।
मानो ये अपने गुण-गण—
अपने ही आप दिखातीं ?

अथवा स्पर्द्धा वश ही वे—
रत्नों से चमक चमक कर।
कहतीं यह गर्व कथा सी—
'तुम से हैं हम बढ़-चढ़ कर'।

है उछल रही शिखरों से,
गंगा की निर्मल धारा।
मानो मलयानिल-चालित—
गिरि का दुकूल हो प्यारा।

कैसी क्या बिछल रही हैं,
सरिताएँ दाएँ-बाएँ।
मानो ये टूट पड़ी हों—
गिरि की मुक्ता-मालाएँ।

या चित्र पटी पर अङ्कित—
चाँदी की हों रेखाएँ।
या चन्द्र-चूड़ शङ्कर की—
फैली हों सुयश प्रभाएँ।
लख इन्हें दौड़ते मन में
कितनी ही बातें आतीं।
झाँकी सुन्दर दृश्यों की—
क्या संग लिये ये जातीं ?
या फिर सन्देश गिरि का
लेकर जातीं यह जग में
"दृढ़ता सीखो तुम मुझसे
प्रिय बन्धु सत्य के मग में"।
हैं घूम रहे जंगल में
द्विरदों के दल मतवाले।
मानो मेघों के बालक
गिरिवर ने हों ये पाले।

कल्पना यही करते हैं
उनके दाँतों पर कविवर।
मानो हों दाँत निकाले—
तम ने प्रकाश से डर कर।
अथवा काले हैं तो क्या—
अन्तस तो है उज्ज्वलतर,
मानो यह परिचय ही वे—
देते हों दाँत दिखा कर ?
विचरण करते घन इस पर—
जब इन्द्र धनुष को लेकर।
तब भास यही होता है—
मानो है स्वर्ग यहीं पर।
भारत का यह रक्षक है
इसकी हैं बड़ी कथाएँ।
छोटी कल्पना हमारी
फिर पार कहाँ से पाएँ।



पर्वतमाला और आना सागर



मूर्तिमान रहस्य-से पर्वत खड़े हैं मित्र।
या धरा की ही यहाँ दृढता हुई एकत्र
या अटलता राजपूतों की हुई सशरीर-
देखती है आज कितने देश में हैं वीर।
या कि कितने मानवों के उच्च कार्य कलाप-
शान्त होकर के इसी का कर रहे वे माप।
जड़ प्रकृति या उच्च उठ कर दे रही सन्देश-
"भूल मत भ्रम में मनुज सर्वोच्च है अखिलेश।"
या कि फैला कर मही निज ऊर्ध्व बाहु विशाल-
भेंटती है उस अलक्षित शक्ति को सब काल।
या प्रपीड़ित पाप से पृथ्वी हुई है आह!
देखती उठ कर वही पापघ्न प्रभु की राह।
या कि भू नभ से मिलन का रख हृदय में चाव-
कुछ चली, चल कर रुकी, सुन शून्यता का भाव।
या त्रिदिव के हित बनाये प्रकृति ने सोपान-
किन्तु रुक जाना पड़ा निज शक्ति का कर ध्यान।
या धरित्री ने किया उस ओर है सकेत—
क्षमा करुणा प्रेम के हैं जहाँ दिव्य निकेत।



सोचता था मैं खड़ा जब यह सभी चुपचाप-
तभी सागर ने तुमुल ध्वनि कर बुलाया आप।
आज सागर का हृदय-गायक उठा क्या बोल।
खोल रे! निर्भय हृदय के भाव अपने खोल!
किन्तु ठहर! न खोल सब के सामने निज भेद-
हृदय हीन हँसे न कोई, हो तुझे फिर खेद।
पर्वतों के मौन से क्या रोष उर में धार-
गर्ज कर देता उन्हें धिक्कार सौ सौ बार!
"देश की स्वाधीनता भी हो गई सब लुप्त—
पर्वतो! फिर भी रहे तुम मूक निष्क्रिय-सुप्त!
देशद्रोही देश को लूटा किये भरपूर-
किन्तु गिर कर के न तुमने किया चकनाचूर।
या कि सागर भीम रव से रहा उन्हें पुकार—
देश के हित जो गये सर्वस्व अपना वार!
या कि उसके हृदय के सुख स्वप्न उठ कर हाय!
मिट गये इस शोक में, वह रो रहा निरुपाय।

× × ×

उठ रहीं लहरें नहीं, सागर उठा कर आज-
कर रहा मानो प्रतिज्ञा देश ही के काज।



ताज

विकसित सित सुमनों की शोभा हो जाये साकार कहीं—
और चाँदनी की पड़ती हो उस पर मधुर फुहार कहीं—
तो फिर कहीं, 'ताज' की थोड़ी सी-शोभा वह व्यक्त करे,
ऐसा है जब 'ताज' हृदय को क्यों न कहो अनुरक्त करे।

शरत्काल के कल हंसों सा-मन्दाकिनी झाग सा-सित—
भू पर यह पूर्णेन्दु विरच कर, किया विधाता दोष रहित—
धन्य धन्य तुम शाहजहाँ हो ! विधि की भी त्रुटि पूरी की—
यह सकलङ्क सघट शशि रच कर रचना नहीं अधूरी की।

विश्व विरह का अश्रु-बूँद है मानों यह जम गया बड़ा।
सुर-तरु सुमन यहाँ भव भय से आते आते हुआ कड़ा।
किम्बा बिछुड़ी हुई प्रियतमा का फिर से पाने को प्यार—
पर फैलाये शाह हृदय की इच्छा उड़ने को तैयार।

नहीं ! नहीं !! जो शाहजहाँ की प्रेम लता थी धूल मिली—
आँसू सिञ्चित विश्व विमोहन उसमें ही यह कली खिली।
शाहजहाँ की प्रेम भावना सा ऊँचा उठ कर यह ताज—
रह-रह कर लज्जित करता है स्वर्गस्थित सब शोभा साज।
पाद प्रान्त में यमुना इसके कल कल कर बहती दिन रात—
मानो उन बिछुड़े हृदयों की पूछ रही भूली-सी बात।
किम्वा कल कल कर कलिन्दजा कहती है कुछ यही विकल—
"आज नहीं तो काल गाल में सबको ही जाना है कल—
इससे जाने के पहले प्रिय कर जाओ कुछ ऐसा काम—
जिससे अमर रहे जगती में एक तुम्हारा नाम ललाम,
पर मेरा कवि-हृदय काँपता यह यमुना की कल-कल धार—
कहीं जगा दे हाय न दम्पति की सोई पीड़ा सुकुमार ?

प्रदीप

"अय तापानल से दग्ध प्राण—
पाता न विश्व जब परित्राण।
दिखलाने को सौहार्द भाव
तब क्या जलने से किया चाव!

है वास मिला प्रिय के समीप
क्या इसीलिए अब हे प्रदीप!
जल कर तप करते हो प्रचण्ड
सामीप्य रहे प्रिय का अखण्ड।

फैला करके उज्वल प्रकाश—
करते हो तम का वश नाश।
क्या लगा इसी से हाय! आप।
जलते जो यों चुपचाप आप?"



प्रेमी ने निज कर से सम्भाल—
प्रज्वलित किया है स्नेह डाल।
क्या उसका यह उपकार मान—
जल कर, प्रकाश करते प्रदान!

काली कोयल को मधुर राग!
कण्टक मय फूलों को पराग!
उज्ज्वल प्रदीप को ज्वलित आग।
विधि का भी है कैसा विभाग?

"जीवन प्रदीप की ज्योति दीन—
उगले कुकर्म कज्जल मलीन।
सोचो! समझो! करलो विचार।
कहता प्रदीप यह बार-बार।।"



प्याला

अधर सुधा से वञ्चित कितने मिट्टी में मिल गये नहीं—
उस मिट्टी ही से प्याले की सृष्टि की गयी हो न कहीं ?
जो यह मधु से भरा हुआ भी अधर सुधा की रखता प्यास—
कौन जान सकता रहस्यमय इस प्याले का यह इतिहास ?

अपने रंग रूप पर उस दिन उपवन में हँसते थे फूल—
लता हिला कर कर-पत्रों के बता रही थी उनकी भूल—
"क्यों इतराते कण्ठ-देश पर देखो यह पद-दलिता धूल—
प्याला बन कर मधुर अधर का करती है चुम्बन सुख मूल।

पावस में मेघों के मिस से रोता है सूना नभ-देश—
करुण ताल की भी भर आती आँख देख कर उसका क्लेश।
किन्तु सदा ही इस प्याले की भरी आँख रहती है आह !
कितनी जलन ? व्यथा कितनी है ? कब कोई करता परवाह ?

तुम कहते मधु पूर्ण चपक यह, कवियों ने कुछ बतलाया—
"होठों की लाली लख इसके मुँह में पानी भर आया।
जो कुछ भी हो आज इसे तुम करने दो अधरामृत पान—
क्या जानें कल क्या होता है रह जायें इसके अरमान।

मैंने कहा पात्र से प्यारे! तुम हो भाग्यवान भारी—
कर पल्लव में रह प्रियतम के पियो अधर रस सुखकारी।
बोला वह अस्फुट शब्दों में क्या क्या मैंने नहीं सहा?
तब फिर प्रिय के योग्य कहीं मैं बन पाया हूँ 'पात्र' अहा!

मधु अधरों से लगा इसे तुम ज्यों-ज्यों करते हो खाली—
अधर-सुधा से भर यह त्यों त्यों लगता उलटा छविशाली।
अधर सुधा के बल मे रहता है यह हाथो हाथ यहाँ—
नहीं कहाँ मिट्टी का प्याला? और गुलाबी होंठ कहाँ?

मधु से बोला पात्र "नशे में कर देते हो सब को चूर—
किन्तु न कुछ मुझ पर बश चलता यद्यपि मैं तुमसे भरपूर।
मधु ने कहा "देख लूगा सब चलो चन्द्र से मुँह के पास—
मदिर-लोचनों को लख कैसे रखते हो तुम होश-हवास?

नभश्चन्द्र है उधर, इधर भी यह मुख चन्द्र निराला है—
असमञ्जस में देख वारुणी को बहकाता प्याला है—
"वह सकलङ्क, कलङ्क रहित यह चन्द्रानन ही तब भाई—
सहोदरों का आज सम्मिलन हो सब विधि मे सुखदाई।

कादम्बरी* हर्ष हिल्लोलित पहुँची जब मुख शशि के पास—
अधर सुधा लोलुप प्याले का तब वह सब समझी उपहास।
फिर क्या था मुँह में जाते-ही-जाते वह इतना बोली—
प्रतिफल तुम्हें मिलेगा इसका होनी थी सो तो होली।
प्रियतम ने पीकर के पेया पात्र भूमि पर दे मारा—
टूट-फूट कर टुकड़े-टुकड़े वहीं होगया बेचारा।
वहीं पास में बैठा था कवि उसने टुकड़ो से पूँछा—
"अधर सुधा से वञ्चित अब तो जीवन हाय हुआ छूँछा॥
"अधर-सुधा को पीकर हमने अमर भाव को अपनाया—
अब न किसी का भय है हमको, टुकड़ों ने यह बतलाया
"मिट्टी में प्रिय हमें मिला दें हम सहर्ष मिल जायेंगे—
सत्वर ही फिर प्याला बन कर कोमल कर में आयेंगे।"



* कादम्बरी = मदिरा।

मुकुर

कर-कंज जिनके परस खिलते हैं कंज—
सुलभ सदैव तुम्हें उनका सहारा है।
मंजु जिनके हैं अंग सार सुकुमारता के—
उन्हें भी तुम्हारा भार लगता न भारा है।
जिनकी अतुल रूप माधुरी को देखें सब—
देखते तुम्हें वे धन्य जीवन तुम्हारा है।
इसी से विमल क्या विमलता ने मान तुम्हें—
मुकुर! बनाया अपना निवास प्यारा है।

प्रकृत-स्वरूप जिनका न कभी लोचनों ने—
बार बार यत्न करके भी देख पाया है।
मान ने सताया कभी, प्रेम ने बनाया व्यग्र—
और कभी लाज ने ही रंग बरसाया है।
पाया जो उन्हें तो कभी हाथ में न पाया दिल—
और कभी कोई अवरोध नया आया है।
किन्तु तुम धन्य हो मुकुर? प्राणवल्लभ का—
तुमने प्रकृत-रूप देखा मन भाया है।

मानवे

लोचन प्रथम रूप-रस पान करते हैं
तब कहीं ध्यान उन्हें मानस का आता है।
मानो तुमसे ये अनाचार लोचनों का सखे।
देखा नहीं जाता दुख दारुण सताता है।
सभी तो न पास भूल के भी कभी आने दिया—
दूर किया दुखद दृगों का सभी नाता है।
धन्य हो मुकुर! देखते हो सदा मानस से—
कवि भी तुम्हारे गुण गाके सुख पाता है।

देखता दृगों से उसे देखते हृदे से तुम—
आते कर में तो मोद मन में बढ़ाते हो।
ऐसा प्रतिबिम्ब खींचते हो मन मोहन का—
मानो रचना को नई रचना सिखाते हो।
एक से बनाते दो, बनाते किन्तु एक से ही—
रूप रंग मे न नेक भेद दिखलाते हो।
समता तुम्हारा कृत्य देख के पुकारती है—
समता स्वरूप होके मुकुर कहाते हो।

सिरानने

व्रते जिसे हो उसे उर में दिखाते तुम—
दीठ बड़े हो न कभी नेक शरमाते हो।
एक बार देख के अघाते नहीं बार-बार—
रूप राशि देखने के हेतु ललचाते हो।
किन्तु रखते ही हाथ से हो रूठ जाते तुम—
और फिर चारु प्रतिबिम्ब भी मिटाते हो।
सत्य ही सुहाये तब कैसे प्रतिबिम्ब तुम्हें—
सामने विलोक जब प्यारा मुख पाते हो।



झरोखा

(१)

अहा ! यह है कैसा सौन्दर्य,
रूप ही हो मानो साकार।
देखता जड़-गृह भी दृग खोल—
झरोखा क्यों कहता संसार !

(२)

कठिन अतिशय कटाक्ष की कोर—
हो गया गृह के उर में छेद।
झरोखा क्यों कहते हैं आप—
बिना जाने ही यह सब भेद ?

(३)

चपलतम है रमणी की दृष्टि—
नहीं रोके से रुकती आह !
झरोखा नहीं उसी के लिए
छोड़ दी यह गृह ने भी राह !

(४)

रूप-दर्शन में बाधक जान—
किरण की शशि ने बरछी मार।
कलेजा गृह का लिया निकाल—
झरोखा, कहना है, निस्सार!

(५)

दिखादो आर पार निज हृदय
न रक्खो प्रिय से तनिक दुराव।
तभी दर्शन देंगे प्राणेश—
झरोखा यही बताता भाव!



चुम्बन

१

प्रथम प्रेम का ललित शब्द कहती गिरा—
तब कृतज्ञता ज्ञापन हित सद्भाव से।
झुक कर करते उसके अधर-कपाट पर—
चुम्बन-रूप प्रणाम लोग क्या चाव से!

२

मृदुल अधर प्याली में सुधा समुद्र है
देख पूर्ण चन्द्रानन उमड़ पड़े कहीं!
चुम्बन का दृढ़-बाँध, बाँध कर रोकते—
सचमुच क्या हैं रसिक इसी से तो नहीं?

३

अगणित उडुगण एक चन्द्र के साथ हैं—
फिर जब चुम्बन समय कलाधर दो मिलें।
तब क्या है आश्चर्य हृदय के गगन में—
अमित हर्ष के जो असख्य उडुगण खिलें?

४

चुम्बन का पीयूष भुला कर भ्रान्त जो—
सुधा बताते हैं शशि में, पाताल में।
वे निश्चय मतिहीन नहीं यह जानते—
उसका मिलना कठिन हमें त्रय काल में।

५

प्रेमी जब प्रेमी का कर ले चूमता—
तब होती अघटित घटना यह ज्ञात है।
कमल-चन्द्र का प्रेम कहाँ कैसे हुआ?
सचमुच यह तो बड़ी विलक्षण बात है।

६

चुम्बन के कुछ वर्ण आगये, इसलिए—
चुम्बक में आकर्षण इतना भर गया!
मधुर अधर हो गये इसी से क्या कहा!
चुम्बन का माधुर्य बिखर उन पर गया?

७

चुम्बन को मादक मदिरा कैसे कहें,
कारण, मदिरा शब्द अयश का धाम है।
और सुधा कह कर करना भ्रम वृद्धि है,
क्योंकि सुधा, कलई का भी तो नाम है?

८

तब क्या जो अनुराग सिन्धु उर में भरा—
छलक उठा यह उसका ही मृदु-रव कहें,
या मिलनातुर उभय मुखों की गूढ़तम,
आपस की ही बात बता कर चुप रहें ?

९

या प्रिय प्रेम बसंत प्राप्त कर हृत्कली,
चटख पड़ी यह हुई उसी की ध्वनि अहा,
उसका 'चुम्बन' नाम किसी ने रख दिया—
चुम्बन प्रेमी कहें मृषा हो यदि कहा ?

१०

वामन के अवतार ग्रहण के प्रथम ही,
हुई रमापति को भी होगी यह व्यथा,
चुम्बन में लघुता न कहीं बाधक बने—
तब मनुजों की बात व्यर्थ है सर्वथा ?

११

जाने क्या हो एक चुम्बनों में सजनि,
खोजाता चैतन्य न रहता ध्यान है,
फीका होते देख, मुक्ति का मोद क्या—
विधि ने ही, यह निष्ठुर रचा विधान है ?

१२

चुम्बन का माधुर्य्य, मधुर-कलरव तथा—
चुम्बन का नव-नृत्य सभी कुछ धन्य है।
मानो इसके निखिल गुणों पर मुग्ध हो,
किया विश्वपति ने ही इसे अनन्य है ?



मुसकान

(१)

मधु को मधुरता—
और देकर के सुधा को स्वाद।
उज्ज्वल प्रभा का—
मोतियों को दे सप्रेम प्रसाद।
शशि को सुशीतलता—
सुमन को सौख्य का दे दान।
हैं राजतीं बिम्बाधरों पै—
श्रीमती मुसकान।

(२)

किलकारियाँ भरतीं—
अनोखे भाव करतीं व्यक्त।
रस-धार हैं बरसा, रहीं
हो प्रेम में अनुरक्त।
किम्वा मनोज-महीप का—
मन मोहने के काज।
बैठी हुईं अबला अधर पर—
सजे दामिनि साज।

(३)

अथवा अधर का—
पी सुधा रस, दीप्ति लहरें छोड़।
विकसित कपोलों और-
विधु से बद रहीं हैं होड़।
या फिर सुधा-सर में—
नहा कर विहँस कर मुदमान।
अधरासनों पर बैठ—
मन को कर रहीं सुख-दान।



स्मृति

हाँ मैं स्मृति हूँ, मेरा आदर सर्वत्र सदा होता समान—
मुझको पाने के लिए लोग करते हैं जप, तप, योग, ध्यान*।
मेरे भक्तों ने, हैं जिनमें लाखों विद्या-वारिधि महान—
सीधे शब्दों में रख छोड़ा है नाम हमारा 'पुनर्ज्ञान'।

मेरा है अद्भुत् चित्र बड़ा, खींचेगा कैसे चित्रकार ?
मैं हूँ असीम, मैं हूँ अनत, मैं हूँ अदृष्ट, मैं हूँ अपार।
मैं एक साथ ही हूँ देखो ! बालिका और वृद्धा, जवान।
है मुझमें ही वह शक्ति, करे जो फिर अतीत को वर्त्तमान।

जल,थल,अनिलानल अम्बर में, सब में मेरी गति लख अभंग
चपला भीत घन में छिपती, भागे फिरते वन में कुरंग।
नीरव निशीथ, निर्जन कानन,हो घिरा जहाँ सघनान्धकार—
जीवट के पुतले भी जाने में जहाँ रहे हों मान हार।

* यम का पाँचवाँ अपरिग्रह इसी स्मृत्यर्थ है।



मैं वहाँ घूमती हूँ निर्भय, करती हूँ उन सब में कलोल—
जिनको तम ने है ढक रक्खा, लेती हूँ उनके भेद खोल।
पल में जाती हूँ मैं कोसों होता कुछ मुझको नहीं कष्ट—
मेरे समान है और कौन बतलाओ दुनियाँ में बलिष्ट?



मुझसे ही वैभव का प्रदीप तज देती है सुन्दरी साथ—
अब नहीं खबर है पुत्रों को घूमता कहाँ पितु है अनाथ?
तब भी मैं रहती हूँ घेरे सतत उसको छाया समान,
बोलो सच्चा साथी मुझ सा है और कौन भू पर महान?

सोचो, समझो जो भू तल पर लोगो! होता मेरा अभाव,
तो गत गौरव की याद दिला पैदा करता ही कौन भाव?
अब तक दुख में आहें भरते, होते कितने ही देश दीन—
कैसे क्या लगता पता उन्हें थे विद्या में सानन्द लीन?

जो देश रहे कल तक असभ्य, वे आज सभ्य बन कर घमण्ड,
अपने गुरु देशों से बकते अब व्यर्थ बड़ाई अण्ड बण्ड।
मैं ही तब उन्हें चिताती हूँ, इतिहास बता कर युक्ति-युक्त—
इस तरह विश्व को रखती हूँ मैं सदा दोष-दल से विमुक्त।



मैं हूँ मीठी प्यारी कितनी? हाँ–कितनी हूँ मैं मूल्यवान?
जाओ पूछो! उस प्रेमी से, जो है वियोग की बना खान।

तीनों लोकों की सम्पति जो मुझ पर कर सकता है निसार—
पर नहीं छोड़ सकता मुझको, मैं हूँ उसकी जीवनाधार।
भावुक कवियों की कविता में मैं ही देती हूँ योग-दान।
मेरे ही बल से उड़ते हैं वे प्रतिभा की ऊँची उड़ान।
छवि-युक्त सुधा से सिक्त चारु बंकिम मयंक दिखला सकान्ति—
मैं ही करवाती हूँ उसमें प्रेमी के नख की लोल भ्रान्ति।
शोकावह घटना-युक्त स्वप्न का लाती हूँ मैं चित्र खींच—
नीरव निराश सन्ध्याओं के ले जाती हूँ मैं ही नगीच।
मैंने देखे अब तक दुनिया के हैं कितने ही फेरफार—
पर मुझे त्रास दे सके भला, है चली कहाँ ऐसी बयार।



संतप्त, निर्धनी, धनी सभी के ऊपर है मेरा प्रभाव,
मैं उसे चाहती हूँ उतना मुझसे जो जितना करे चाव।
इतना सब होते हुए मानती हूँ आज्ञा मैं निर्विवाद—
दौड़ी आती हूँ मैं झटपट करता जब कोई मुझे याद।



चित्र

खींचा गया, खींचता इसी से है हमारा चित्त—
रंगा है, इसी से रँगने में नहीं डरता।
माधुरी अनूप रूप की है अंग अंग भरी,
अंग में इसी से रूप-माधुरी है भरता।
कुशल करों से उन्हें देख के उतारा गया—
इसी से है देखते ही दिल में उतरता।
सब कुछ करता है किन्तु ऐ विचित्र चित्र!
उन-सा हो क्यों न हमें, उनसा तू करता!

  

चंचल है वह, किन्तु यह तो अचंचल है—
चलता है वह, यह नहीं चल पाता है।
जब चाहे तब वह अपने में लेता सब—
और यह और के ही चाहे लिया जाता है।
हर्ष शोक आदि से प्रभावित है होता वह—
और यह इनके प्रभाव में न आता है।
चित्त और चित्र में विभेद इतना है किन्तु—
तेरा चित्र है इसी से चित्त में समाता है।



बांसुरी या हिन्दू जाति

सर्वतोमुखी समता



व्यर्थ ही तुझे है अभिमान बडे वश का हा !
निपट अधीन बोलती पराई बोली है।
छिद्र ढूँढने के लिए जाना न पडेगा दूर—
छिद्रों से भरी है और अन्दर से पोली है।
पेट में न तेरे जरा सी भी बात पचती है—
हलकी बडी है लाज तूने सब धोली है।
छोटे बडे सभी की अँगुलियों पे नाचती तू—
सद बाँसुरी है या कि हिन्दू जाति भोली है ?

  

काट छाँट का है लगा—
दोनों ही को रोग।
वशी हिन्दू जाति का—
है अद्भुत सयोग !

किस किससे ?



१

आज मैं सीखूँगी अनजान।
नवल कलिका से मृदु मुसकान।
मधुकरी से फूलों के गान।
मधुर छाया से सुखमादान।
आज मैं सीखूँगी अनजान।

२

निशा के हिम कण से शृङ्गार—
उषा से सोने का ससार।
पद्मिनी से प्रियतम का ध्यान।
आज मैं सीखूँगी अनजान।



श्वेत वक

—अन्योक्ति—



श्वेत वक तुम हो बड़े कठोर !

साधु वेश में रे खल कपटी ! तुम हो पक्के चोर ! श्वेत०

पावन-नीर-तीर रहते हो, दारुण शीत घाम सहते हो,

एक पाँव से भी निशि-वासर तप करते हो घोर ॥ श्वेत०

दुनियाँ में कहलाते ध्यानी, मौनी बन करते मनमानी,

दीन मीन पर नहीं दिखाते भूल कृपा की कोर ॥ श्वेत०

जहाँ मीन को हा ! घर पाया, तहाँ चोंच से पकड़ दबाया,

गट्ट-सट्ट का पाठ पढ़ाया, होने दिया न शोर ॥ श्वेत०

पहले तो विश्वासी बनते, पीछे से फिर जहर उगलते,

निर्बल का हो हृदय मसलते, अजमाते हो जोर ॥ श्वेत०

गोरा बन पाने से क्या है ? सोचो इठलाने से क्या है ?

जब कि हृदय के तुम काले हो अदय दीन की ओर ॥

श्वेत वक तुम हो बडे कठोर ॥



१

पर दुःख देखने में कातर नयनों में हम आभरण एक—
हैं प्रथित हमारी भाँति हमारे गुण-गण भी अनुपम अनेक।
हम प्रकृत प्रेम के निर्झर हैं, झरते हैं झर झर लमक झमक—
मनहर मानस के मोती हैं, है चारु हमारी चमक-दमक।
हम मूक अनोखे हैं ऐसे, देते हैं सारा भेद खोल,
हम दृग विहीन हो कर के भी दृगवालों के हित हैं अमोल।
हम परम पुण्य के सफल बीज, हैं विकल वेदना के शृंगार,
हम हैं आकुल वे आर्द्र भाव जो उमड़ पड़े लख नयन-द्वार।
हम हैं करुणा के कलश, दया के दूत, शान्ति के चिरावास—
शतदल पर लिखते हैं हिमकण इतिहास हमारा सोल्लास।

× × × ×

हैं विमुख सोमरस से सुरगण पीते न हंस पय हैं उदास—
जब से श्रुति गोचर हुई हमारी कीर्ति कौमुदी आस पास।
सुर बालाओं ने फेंक दिये मणियों के कृत्रिम मान हार—
फर प्राप्त हमारी सूत्र-रहित मालाओं के प्रेमोपहार।

× × × ×

हैं मीन सदा जल में रहते, पर मीनों में जल का निवास—
कर सिद्ध नई विज्ञान कला का किया हमीं ने है विकास।

× × × ×

हम हैं उनके सच्चे साथी—है क्रूर विधाता जिन्हें वाम,
अब बतलाओ हम कौन, हमारा दो अक्षर का सरस नाम ?



अनाथ के आँसू

मैं रोता हूँ और आँसुओं से—
चिथड़ा जाता है भीज।
फिर वह भी रोता है मानो—
आया उसका हृदय पसीज।
बहुत रोकते रहने पर भी,
बाहर वह आते आँसू।
मानो हरि से दुख गाथाएँ,
कहने को जाते आँसू।
आह! कहा क्या मेरे आँसू,
मिट्टी में मिल जाएँगे।
नहीं! नहीं!! वह हरि करुणा को-
ढूँढ वहाँ से लाएँगे।
सुनो अमिट भाषा में वे क्या—
निज सन्देश सुनाते हैं।
"गिर जाएँगे अत्याचारी—
जैसे हमें गिराते हैं।"



निवेदन

तेरी विरह व्यथा से क्षण भर होना भी बेहाल—
परम भाग्य मय जग-जीवन का है आनन्द रसाल।
फिर मिलने में जानें क्या-क्या सुख हैं ? कितना प्यार ?
क्यों वञ्चित रखते हो उससे मेरे प्राणाधार ?

   

चरण कमल तक पहुँच न पाये जो मम जीवन-फूल—
तो वह उसी पहुँचने की धुन में मिल जाये धूल।
जिससे पाद-पद्म छूने की प्यारी अन्तिम चाह—
और अधिक दृढ़ अभिलाषायुत रहे ढूँढ़ती राह।



प्रतीक्षा

मैं तेरे चरणों से चिह्नित पाता हूँ जो धूल—
उसे हृदय से लगा लगा कर जाता हूँ दुख भूल।

* * * *

तेरा मृदु सङ्गीत वहन कर लेती हुई हिलोर—
जब जाती है पवन पास से, हो आनन्द विभोर—
मैं कहता हूँ तनिक ठहरजा! उत्सुक हैं ये कान—
सुन लेने दे इन्हें बावली? प्रियतम का कल गान!

* * * *

तेरा मधुमय हास खेलता जब फूलों के पास—
पूरी हो जाती है कुछ कुछ इन नयनों की आस।
सुमन-समूहों में सञ्चित है इतनी कहाँ सुवास—
सुरभित है जितनी प्रियतम के सुन्दर मुख की श्वास
हाँ—पाया जाता है उसका थोडा सा आभास—
किन्तु कहीं क्या बुझ सकती है ओसों चाटे प्यास?

* * * *

आते हैं, अब आते होंगे—नटवर नन्द किशोर—
कितने नाच नचाये मुझको, आने दो इस ओर!



दर्शन

नेत्रों ने निज पूर्वजन्म के पुण्यों का शुभ फल देखा—
और विश्व हित निरत भुजाओं ने अपना भुज-बल देखा।
जिह्वा ने कोमल शब्दों का देखा सुन्दर सरस प्रवाह—
रोम रोम खिल उठे हृदय ने देखा सब हृदयों का शाह।
उमगों ने देखा अनुराग—
शान्ति ने देखा सच्चा त्याग।

❁

मतवाले प्रेमी ने देखा फूलों सा हँसना तेरा—
बूँद-बूँद से मोती बन कर सीपों में बसना तेरा।
न्याय नीति की ललित लता ने हरियालेपन को देखा—
बहुत दिनों के बाद विछोही ने जीवन धन को देखा।
विचारों ने देखा सुविचार—
और पतितों ने निज उद्धार॥

❁

मूर्तिमान भोलापन अपना भोले भालों ने देखा—
शुचि स्वर्गीय दृश्य अति शोभामय भववालों ने देखा।
खोया हुआ लाल बरसों का खिल कर लालों ने देखा—
आशा का उज्ज्वल प्रभात प्रिय हिल कर डालों ने देखा।
खोज ने देखा होते प्राप्त।
विश्व ने देखा सब में व्याप्त॥

विवशता

देखूँ जो तुम्हें तो तुम देखते न मेरी ओर—
ध्यान धरता तो ध्यान में भी खिंचा पाता हूँ।
जितना ही पास पहुँचाता अपने को हाय!
उतना ही दूर तुम से मैं किया जाता हूँ।
चलते सभी हैं काम मुझसे तुम्हारे किन्तु-
सूझता न एक भी उपाय अकुलाता हूँ।
भूल पाता-तुम्हें किसी भाँति एक बार तो मैं-
देखता कि कैसे तुम्हें याद नहीं आता हूँ?



दृढ़ता

वे मीठी-मीठी आशाएँ क्या क्षण भर में होंगी शान्त ?
नहीं ! नहीं !! यह कभी न होगा मैं क्यों होती हूँ उद्भ्रान्त ?
वह मेरा है, वह मेरा है, मेरा यह चिर सञ्चित ध्यान–
क्या कदापि यों हो सकता है, मुझको ही फिर मिथ्या भान ?
क्या वह मूर्ति हृदय में जिसने बना लिया है अपना स्थान—
नहीं ! नहीं !! यह हृदय स्वयं ही जिस पर है अनुरक्त महान।
मेरे इन अन्तर्नयनों से हो सकती है पल भर ओट—
निर्बल भी विश्वास हमारा, इस विचार से पाता चोट !

* * *

फिर क्यों करके सोचूँ मैं यह, तुम मुझसे होओगे दूर ?
जब कि विश्व को मैं पाती हूँ, सब प्रकार तुम से भरपूर !!



उसकी छवि

१

कितने फूल खिले थे वन में—
क्यों उस पर मन ललचाया ?
जितना दूर भगा मैं उससे—
उतना ही समीप आया ।
कितने फूल खिले थे वन में, क्यों० ।

२

उसकी कुसुमित रूप-राशि,
कुछ ऐसी नयनों को भायी ।
उलझ अचानक गये न माना—
मेरा कुछ भी समझाया ।
कितने फूल खिले थे वन में, क्यों० ।

३

नहीं जानता था मैं उसमें—
छिपी हुई है छद्म-कला।
एक बार ही के दरसन में—
जिसने मन को बहकाया।
कितने फूल खिले थे वन में, क्यों०।

४

पर अब क्या ? अब तो कोमल—
अन्तस्तल में मैं खेलूँगा।
वन, पर्वत सब में देखूँगा—
प्रीतिमती उसकी छाया।
कितने फूल खिले थे वन में, क्यों०।



वहीं

जहाँ तुम्हारे कर पल्लव की
अरुण प्रभा हो फैल रही।
जहाँ प्रेम पाथोजों से हो—
पूरित पुलकित मुदित मही ॥
जहाँ धूलि-कण के मिस मोती—
मन्द-मन्द मुसकाते हों।
जहाँ हर्ष हिल्लोल हृदय में—
हरियाली छिटकाते हों।
जहाँ पवन के मृदु झोकों से—
करुणामृत हो बरस रहा।
जहाँ पुण्य के श्री चरणों को—
मस्तक होवे परस रहा।
जहाँ गोद को खोल—
जोहती होवे बाट शान्ति प्यारी।
वहीं ! वहीं !! हाँ वहीं ले चलो ?
आओ ! मोर मुकुट-धारी !!



कब ?



अहा ! नाथ ! प्राकृतिक मनोहर जगल में कब घर होगा ?
हरी हरी मखमली घास पर कब मेरा बिस्तर होगा ?
कोकिल के मीठे स्वर सा कब यह मिठासमय स्वर होगा ?
खिले कर्म कमलों से कब यह खिला हृदय का सर होगा ?
चाँदी सी चिलकती चाँदनी कब जी को बहलाएगी ?
दे दे कर थपकियाँ लाड से कब हाँ—हवा सुलाएगी ?
स्वच्छ नभोमण्डल सा जाने कब यह हाय ! हृदय होगा ?
सूरज सा सुनहरा हमारा कब यह भाग्य उदय होगा ?
करुणा-जनक दृष्टि कब मुझ पर पशु पक्षी दिखलायेंगे ?
दौड़ दौड़ कर के मृग शावक कब मुझसे लपटायेंगे ?
ललित-लताओं से मिल कर कब प्रेम-लता हरियाएगी ?
शान्ति सिन्धु की ओर सुरसरी जीवन की कब जाएगी ?

नैवेद्य



सुघड सलोनी कुसुम कली कब दिल की कली खिलाएगी ?
    आँखों की प्रेमाश्रु धार कब मन का मैल मिटाएगी ?
तरल तरगें कब उमग में आकर तान सुनाएँगी ?
    प्यारे के सगीत-सुधा का कब वे पान कराएँगी ?
नचता हुआ कछारों में कब प्रेम मगन में घूमूँगा ?
    रग बिरगे फल पत्तों को मस्त हुआ कब चूमूँगा ?
अहा ! इष्ट अम्बुद की कब मैं एक बूँद पा जाने को—
    'चातक' के सम तृषित रहूँगा मानस-कमल खिलाने को ?



समालोचना

अम्बर कितना विस्तृत-विशाल
स्वर्णिम ऊषा का स्वर्ण-वसन तारक-कुसुमों की पहन माल
उन्मुक्त हँसी ज्योत्स्ना के मिस हँस-हँस जग को करता निहाल
घनश्याम संग जिसमें आकर खेला करती चपला बाला
मन्थर गति से घूमा करता जिसमें मलयानिल मतवाला
कलरव जिसमें करते विहग, भरते सुर धनु भी सप्त रंग
गूँजा करते जिसमें अब तक मोहन-मुरली के स्वर अभंग
ऊपर अनन्त सा—फैल रहा, जैसे हो कोई बड़ी ढाल
अङ्कित तो भी शून्यता भाल।

कितने सुन्दर सुकुमार फूल
बिछुड़ा शैशव ही उग आया वरसों पहले जो मिला धूल
अथवा नभ के तारे आये भूतल पर पथ हैं कहीं भूल
भन भन कर गाते भ्रमर सदा गुण-गौरव के एकान्त गीत
हृदयों पर रह कर सहज-सहज सब के हृदयों को लिया जीत
सौरभ समीर को दे कर के वितरित करते आनन्द प्यार
अवनी के श्यामल कुञ्जों में जुगुनूँ सी देते हो वहार
इतना सब फिर भी हो अवाक्, नश्वर सरिता के खड़े कूल
हैं वन्धु तुम्हारे हाय! शूल।

निर्झर क्यों इतना तीव्र नाद
है व्यथित तुम्हें करती रह रह किस प्रथम प्रणय की करुण याद
ढरकाते रहते हो दृग जल किसके धोने को पूज्यपाद
रूठे प्रेमी की तरह हाय! रुकने का लेते नाम नहीं
उस छवि के देखे विना तुम्हें क्षण-भर का भी आराम नहीं
वन वल्लरियाँ, पुष्पित कुञ्जें, सुन्दर हरीतिमा, तरु-छाया
सब ने ही मिल के ललचाया पर तुम्हें नहीं कुछ भी भाया
प्रिय से मिलने के लिए उच्च गिरि शृङ्गों को भी चले फाँद
इतने दृढ फिर सब के सम्मुख खोलना न था मन का विषाद
हे मुखर! न अच्छा आर्तनाद।



पथ



"विरहाग्नि जला तन भस्म करे,
फिर उसे उड़ा ले चले पवन।
जाकर के उस पथ पर रख दे,
जिससे जाते हों जीवन धन।"
विरहणी की यह अन्तिम आशा
प्रिय के पद चुम्बन की प्रतिपल।
यदि मैं न कहीं होता जग में—
तो फिर होती किस भाँति सफल ?

प्रिय के पद चिह्नों से अङ्कित—
पावन, यह मेरी देख धूल।
प्रेयसी शीश पर हैं रखतीं
कहतीं की "विधि ने बड़ी भूल—
पथ रेणु बनाया जो न हमें—
चूमतीं अरुण पग-तल रसाल।"
सुन कर उनकी ये मृदु बातें—
मैं हर्ष नहीं सकता सँभाल।

नूपुर शिञ्जित पद-युग सुन्दर
लाखों लोचन जब उलझा कर—
हैं मन्द-मन्द चलते मुझ पर
सब स्वर्ग हृदय में ललचा कर—
"कहता कि हाय! मैं पथ न हुआ
धिक है मेरा निष्फल जीवन"
अपने इस गौरव को सुन कर,
पुलकित होता मे मन ही मन।

जब सुन्दरियाँ चलती मुझ पर
तब यह इच्छा होती मेरी
"विधि ने क्यों मुझे कठोर किया
मैं होता फूलों की ढेरी!"
सचमुच मेरी यह इच्छा ही
पूर्वादल का धर रूप नवल।
सुन्दरियो के मृदु चरणों को
सुख पहुँचाने आती प्रतिपल।

प्रियतम पथ पर हैं गमनोद्यत—
प्रियतमा पिरोती अश्रुमाल।
दो हृदय बिछुड़ते हैं मिल कर
मैं रोक नहीं सकता सँभाल।

वक्षस्थल हो जाता विदीर्ण—
उसके ही ये उड़ते रजकण।
मुझसे दयार्द्र होना सीखें—
जगती के निर्दय मानवगण।

मुझसे कब किसका कुछ दुराव—
अन्तःपुर तक मेरा प्रवेश।
सुनता हूँ मैं सब के रहस्य
करता हूँ कब मैं प्रकट लेश।
देता हूँ मैं सन्देश यही
"जो जन रहते हैं पथारूढ—
वे इष्ट लाभ करते अवश्य—
भटका करते पथ भ्रष्ट मूढ ।

करो क्यों न स्वीकार ?

चचलते तू ! क्षण-भर उनको नहीं बैठने देती पास—
क्या तुमको इतने प्यारे हैं—जीवन धन वे प्रेम निवास ?

* * * *

अरी मन्द गति ! आज कहाँ तू पगली करती है विश्राम—
आकर नेक रोक ले उनको, बन जायें दोनों के काम।
अनुरोधो ! तुम में क्या बल है, आज तुम्हीं कुछ करो सहाय—
सुने गये हो तुम प्रियतम से, यह सम्मान सफल हो जाय।

* * * *

फूलो ! मचल पड़े कुछ ऐसी—आज नयी तुम में मुसकान—
किसी तरह से खींच सके जो, मेरे प्रियतम का प्रिय ध्यान।
तो मैं धन्य सराहूँ तुमको, दूँ उस हृदय देश पर ठौर—
जहाँ हमारे प्रियतम को तज नहीं आज तक पहुँचा और।

* * * *

जब प्रिय ! तव सौन्दर्य शब्द में था तब थी यह मेरी साध—
किसी तरह से रिक्त हृदय में—भरलूँ वह सौन्दर्य अगाध।
पर अब यह चिन्ता है जब यह भर जायेगा मानस दीन—
तब कैसे मैं उसे विश्व को सौंप सकूँगी ममता-हीन ?
इससे यही विनय है—मेरा कर दो इतना हृदय विशाल—
जितने में मैं सकूँ नाथ ! तव रुचिर रूप का अमृत ढाल।

* * * *

तुम मेरे हो सचमुच इसको खूब जानती हूँ मैं नाथ !
क्या हैं नहीं रात दिन मेरे—भाग्यवान उर-वल्लभ साथ ?
तुम मेरे हो सब मे बढ कर, इसका है यह सिद्ध प्रमाण—
किसलय कोमल पाणि तुम्हारे, मृदु माखन से हैं यह प्राण।



सर्वस्व समर्पण



१

मन्द पवन जब हृदय सरोवर में सुख-लहर उठावे—
मीठी मीठी तान पपैया जब फिर आन सुनावे—
मधुर गन्ध से दशों दिशाएँ,
जब हाँ—हास्यमयी हो जाएँ,
उसी समय तू आ जा प्यारे !
कर में मंजु मुरलिया धारे—
सुखदायक सङ्गीत सुधा का झरना विमल बहा दे।
अपने पास पहुँचने तक की प्यारी डोर गहा दे।

२

थिरक उठें वृक्षों में पत्ते और गगन में तारे,
चिलक उठे चाँदनी प्रेम से दोनों हाथ पसारे।
तब मैं तेरा रूप निहारूँ—
अपना सब कुछ तुझ पर वारूँ !
तेरी गोदी में मैं आऊँ—
या तुझको अपने में लाऊँ—
व्याकुल जी की साध मिटे सब, पता शान्ति का पाऊँ
यह जीवन का फूल प्राणधन ! तेरी भेंट चढ़ाऊँ !



प्रभात

अरुणोदय हो गया उषा सुख में पगी,
प्राची दिशि में दीप्ति दिवाकर की जगी।
प्रकृति-नटी हँस उठी अनोखे भाव से,
लगी घोलने सुधा चौगुने चाव से।

शीतल-सुरभित-सुखद सलोनी, सोहनी—
मन्द-मन्द बह उठी पवन मन मोहनी।
पात-पात को लगी नचाने प्यार से—
दे दे कर थपकियाँ एक ही तार से।

लहराने लहलही लताएँ लग गयीं
मानो निद्रा त्याग अचानक जग गया।
छवि की छिति पर छटा निराली छा गयी।
कैसी क्या कुछ कहें हृदय को भा गयी।

सरवर के जो अमल नयन जाते गने—
नवल कमल खिल उठे वही शोभा सने।
रसिक भ्रमर कल तान, गान करने लगे—
भूतल पर भावना मधुर भरने लगे।

चक्रवाक अविराम प्रियायुत मोद में—
करने लगे विहार प्रकृति की गोद में।
मानो सारा भूल गये दुख रात का,
लख कर प्यारा वदन प्रफुल्लित प्रात का।

कुसुमित कलित कछार हरित रंग में रँगे—
दिखलाने लग गये हृदय बहु जगमगे।
कुञ्ज-कुञ्ज खग पुञ्ज मञ्जु गाते हुए—
लगे डोलने अहा! सुछवि पाते हुए।

बाल वृन्द भी उठे नींद को छोड़ते—
राम नाम में चपल चित्त को जोड़ते।
खिल-सी चारों ओर मनोरमता उठी
सचराचर में नयी शक्ति आकर जुटी।

सरिताएँ गा उठीं सिन्धु के संग में—
प्रातःकाल के गीत उमंग तरंग में।
श्रवण-सुधा से सदय हृदय सिंचने लगे—
मानस-पट पर चारु चित्र खिंचने लगे।

हरी घास पर ओस बूँद के मिस जड़े।
देने शोभा लगे अहा! मोती बड़े।
रवि के नन्हे हाथ उन्हें हैं तोड़ते—
माँ के चरणों पर सप्रेम फिर छोड़ते।

कैसा यह स्वर्गीय दृश्य अभिराम है।
मनुज मात्र के लिए शान्ति का धाम है।
आओ आगे बढ़ें! दिव्य दृग खोल दें—
मातृ-भूमि की प्रात समय जय बोल दें॥



सूर्यास्त

किरण करों से प्यार कमलिनी कुल का
करता भानु प्रवीण।
दिन जल-जल कर प्रिया रात्रि के—
मिलन विरह में होता क्षीण।
अपने आश्रित दिन का दिनकर
देख-देख कर कष्ट कराल—
छिप जाता मानो दे उसको—
मिलने का अवसर उस काल ?
रवि का भीषण तेज देख कर,
नहीं सूझता तम को और—
सुन्दरियों के घन केशों को
छोड़ एक छिपने का ठौर।

सीख कुटिलता उन बैंशों से—
आवेगा तम सन्ध्याकाल।
छिप जाता रवि यही सोच क्या ?
तब न गलेगी उसकी दाल ?
वह है मित्र, सहर्ष चन्द्र को,
करता है निज प्रभा प्रदान,
पर क्यों उदय देख कर उसका—
सहसा शशि होता है म्लान ?
दिन भर यही सोचता रहता—
पर न भेद कुछ पाता है।
नहीं अस्त होता वह प्रभु से—
यही पूछने जाता है।
नभ में ऊपर चढ कर देखा—
पर प्रिय को कब पाता है।
जल भुन करके जैसे-तैसे—
रवि यह दिवस बिताता है।
अस्त न होता सान्ध्य समय वह—
उतर भूमि पर आता है।
दीप वेप धर फिर घर-घर में—
पता लगाने जाता है।

पश्चिम दिशा ओर रवि जाता,
पतिव्रता नलिनी को छोड़ ।
नलिनी भी निज नेत्र मूँद कर,
लज्जावश लेती मुँह मोड़ ।
वैभव हीन देख कर रवि को—
दिशा प्रतीची देती टाल ।
अस्त नहीं—वह पश्चिमाब्धि में—
चला डूबने सब उस काल ।
कठिन तपस्या में जब दिन-भर,
निरत रहा दिनमणि आली।
लाक्षा रस रञ्जित प्रियतम के—
मिली पदों-सी तब लाली ।
क्रूर काल से किन्तु न उसका,
वह सौभाग्य गया देखा ।
लाली मिटा, खींच दी उसने,
सन्ध्या की काली रेखा ।



न्याय

"मैं हूँ कितना उज्ज्वल प्रभात !
खग-कुल के कलरव से कूजित
सुमनों के सौरभ से सुरभित
सुन्दर शीतल उष्मा-विरहित
द्रुम-दल से लहरित, हरित, मुदित दिन-मणि से मेरा जड़ित गात।
मैं हूँ कैसा उज्ज्वल प्रभात !

'मङ्गलमय हो मेरा प्रभात,
सब की वाणी पर एक बात।
करते सब मुझ से शुभारम्भ,
पर मुझे न इसका तनिक दम्भ
छिपते उलूक तम चोर सभी चलता जब मेरा मधुर वात।
मैं हूँ कैसा उज्ज्वल प्रभात।

"पर तू कैसी सन्ध्या काली।
गो धूलि धूसरित तन तेरा—
आलस्य भरा है मन तेरा।
तम तोम भयानक घन तेरा
क्षण क्षण गहरी नीरवता से है भरी हुई तेरी प्याली।
पर तू कैसी सन्ध्या काली

"मैं काली हूँ पर कब अपनी जग से कालिमा छिपाती हूँ।
जो हैं प्रभात से कर्म निरत उनको मैं श्रान्ति मिटाती हूँ।
मेरी छाया में खिलते हैं सुख स्वप्नों के सुकुमार फूल,
दिन भर के बिछुड़े मिलते हैं कर्कश कोलाहल कष्ट भूल।
बढ़ते बढ़ते मैं ही मादक रजनी का रखती मधुर रूप—
पर तू तो जब बढ़ता प्रभात, तब हो जाती है कठिन धूप।

रजनी का होता अन्त जहाँ—
तेरा होता प्रारम्भ वहाँ
पर तुझे भला यह दुःख कहाँ ?

दम्भी तू तो लज्जा तज कर अपने मुँह बनता आप भूप ?॥

मध्यस्थ बना मध्याह्न सुन रहा था दोनों की बात घोत—
बोला मत झगड़ा करो सुनो लो ! गाता हूँ मैं शान्ति गीत !
"अपने अपने समय के सुन्दर दोनों चित्र,
शैशव में शिशुता भली वृद्ध वृद्धता मित्र।"



समीर की चाह

चाह नहीं है, सुमनों का सौरभ,
पाकर के इठलाऊँ।
चाह नहीं है अलि माला से,
गान सीख कर के गाऊँ।
चाह नहीं है प्यारी का—
सन्देशा प्रिय तक पहुँचाऊँ।
चाह यही है, वीर ध्वजा से,
क्रीड़ा कर मैं सुख पाऊँ॥



पतंग

उड़ते हो शून्य में पतंग क्यों बताओ हमें–
खोजते हो किसको तुम्हारा कौन प्यारा है ?
जीवन के पथ का तुम्हारे ध्रुवतारा कौन,
जा रहे कहाँ हो किसने तुम्हें पुकारा है ?
नभ की सहज सुषमा है चित्त में क्या बसी,
अथवा प्रपंची जग से किया किनारा है ?
यत्न करता हूँ, तो भी कुछ जान पाता नहीं–
जाने तुमने क्या निज मन में विचारा है ?

(२)

अनुकूल पवन को पाकर पतङ्ग जब–
रसिक खिलाड़ी तुम्हें ऊपर उड़ाता है ।
गिर पड़ते हो तब तुम बार बार मानो–
एक पल को भी न विलग होना भाता है ?
किन्तु जब कर में रहेगी डोर जान लेते–
तब कहीं धीरज तुम्हारा चित्त पाता है ।
धन्य हो पतङ्ग ! प्रेम व्रत है तुम्हारा धन्य !
प्रेमी और दूसरा न तुम सा दिखाता है ।

(३)

प्राण धन को विनोद देने के लिए ही तुम–
शून्य में भी उड़ने से नहीं घबड़ाते हो ।
सतत इशारों पर नाचने में सुख पाते–
जाते उस ओर कभी इस ओर आते हो ।
डरते न नेक लड़ते हो ज्ञाति बन्धु से भी–
काटते कभी हो कभी आप कट जाते हो ।
फिर भी न भूल के भी गाते निज प्रेम-गीत–
प्रेमियों को सच्चा प्रेम करना सिखाते हो ।

उत्तर

इन फूलों से उन फूलों पर,
उड़ते फिरते मधु-लुब्ध भ्रमर।
मैंने हँस कर कहा "अरे !
क्या यही प्रेम-का तत्व हरे !"

भन भन कर कहने लगे भ्रमर,
कुछ हुआ क्रुद्ध सा उनका स्वर।
"मानव ! पहले तुम निज चरित्र-
देखो ! तब हम पर हँसो मित्र !"

ऐसे दुख की क्या बात दीप ?
जलते जो सारी रात दीप ?
सिर हिला दीप ने यही कहा--
"मेरा प्रकाश सब व्यर्थ रहा !

मेरे मन की हलचल अपार—
क्या समझ गई प्रतिध्वनि उदार।
जो वह मेरे ही संग संग
बोली कर के निज मौन भंग।

"जो कुछ तुम कहते वही कहूँ,
अपनी मैं कुछ भी नहीं कहूँ।
हाँ, मैं हाँ करती रहूँ सदा—
क्या यही भाग्य में हाय ! बदा।

मानव ! तेरा यह अनाचार—
मुझको असह्य है बार बार।
इससे मैं अबला अधरा हाय !
लुक-छिप दिन काटूँ क्या उपाय !,

मानव! तव मन का अंधकार—
कब क्षण भर भी मैं सका टार।
बस इस चिन्ता ही से अधीर—
युग-युग से मैं जल रहा वीर!

तट से टकरा कर लोल लहर।
जब फोड़ रही थी अपना सर।
मैंने पूछा "यह सर्वनाश—
किससे करती होकर हताश!"

लो! अभी सुनाई पड़ी यहाँ
प्रतिध्वनि विलुप्त हो गयी कहाँ?
उड़ गयी दूर क्या क्षितिज पार
निज प्रियतम को करने दुलार?

कल-कल करके वह बोल उठी
हृद्गत भावों को खोल उठी।
"मानव तेरा सुन सुयश-गान—
आई थी ले आशा महान्।

पर देख तुम्हें यों विकृत भ्रान्त—
मैं हूँ निराश मरती अशान्त।
जगदीश तुम्हारा करे क्षेम
उपजे तुम में बन्धुत्व प्रेम!"



संसार

शीतल-सुखद विभात-वायु निज मधुर-मधुर सर सर रव से—
"कहता है गति शील जगत यह" द्वार द्वार चल कर सब से
सौरभ ने मिल कर के उससे कहा "ठीक है, ठीक सखे!
आज यहाँ, कल वहाँ न जाने डोल रहा हूँ मैं कब से!"
"सदा सुगन्ध भरे फूलों का दिव्य जगत है यह सुन्दर"
भन-भन कर कहते फिरते हैं ललित लताओं से मधुकर।
लतिकाएँ भी शीश हिला कर मानो कहतीं हैं उनसे—
"एक फूल ही नहीं, किन्तु हैं साथ साथ में शूल प्रखर"
हेमाञ्चल धारिणी उषा है, और अरुण रक्त शुक धर—
"नित्य मिलन मय जगत अमर यह" कहते हैं दोनों मिल कर
सभी धूल में मिल बतलाते तरल ओस के लघु मोती
"अपनी तो क्षण भर की दुनियाँ हम क्या जाने जगत अमर?"

(२)

अनुकूल पवन को पाकर पतङ्ग जब–
रसिक खिलाड़ी तुम्हें ऊपर उड़ाता है।
गिर पड़ते हो तब तुम बार बार मानो–
एक पल को भी न विलग होना भाता है ?
किन्तु जब कर में रहेगी डोर जान लेते -
तब कहीं धीरज तुम्हारा चित्त पाता है।
धन्य हो पतङ्ग ! प्रेम व्रत है तुम्हारा धन्य !
प्रेमी और दूसरा न तुम सा दिखाता है।

(३)

प्राण धन को विनोद देने के लिए ही तुम–
शून्य में भी उड़ने से नहीं घबड़ाते हो।
सतत इशारों पर नाचने में सुख पाते
जाते उस ओर कभी इस ओर आते हो।
डरते न नेक लड़ते हो ज्ञाति बन्धु से भी–
काटते कभी हो कभी आप कट जाते हो।
फिर भी न भूल के भी गाते निज प्रेम गीत
प्रेमियों को सच्चा प्रेम करना सिखाते हो।

उत्तर

इन फूलों से उन फूलों पर,
उड़ते फिरते मधु लुब्ध भ्रमर।
मैंने हँस कर कहा "अरे!
क्या यही प्रेम का तत्व हरे!"

भन भन कर कहने लगे भ्रमर,
कुछ हुआ क्रुद्ध सा उनका स्वर।
"मानव! पहले तुम निज चरित्र–
देखो! तब हम पर हँसो मित्र!"

ऐसे दुख की क्या बात दीप?
जलते जो सारी रात दीप?
सिर हिला दीप ने यही कहा—
"मेरा प्रकाश सब व्यर्थ रहा!

मानव! तव मन का अंधकार—
कन क्षण भर भी मैं सका टार।
बस इस चिन्ता ही से अधीर—
युग-युग से मैं जल रहा वीर!

लो अभी सुनाई पडी यहाँ
प्रतिध्वनि विलुप्त हो गयी कहाँ?
उड गयी दूर क्या क्षितिज पार
निज प्रियतम को करने दुलार?

मेरे मन की हलचल अपार—
क्या समझ गई प्रतिध्वनि उदार।
जो वह मेरे ही संग संग
बोली करके निज मौन भंग।
"जो कुछ तुम कहते वही कहूँ,
अपनी मैं कुछ भी नहीं कहूँ।
हाँ, मैं हाँ करती रहूँ सदा—
क्या यही भाग्य में हाय! बदा।
मानव! तेरा यह अनाचार—
मुझको असह्य है बार बार।
इससे मैं अबला अवश हाय!
लुक छिप दिन काटूँ क्या उपाय!
तट से टकरा कर लोल लहर,
जब फोड़ रही थी अपना सर।
मैंने पूछा "यह सर्वनाश—
किससे करती होकर हताश!"
कल कल करके वह बोल उठी,
हृदगत भावों को खोल उठी।
"मानव तेरा सुन सुयश गान—
आई थी ले आशा महान्।
पर देख तुम्हें यों विकृत भ्रान्त—
मैं हूँ निराश मरती अशान्त।
जगदीश तुम्हारा करे क्षेम,
उपजे तुम में बन्धुत्व प्रेम!"

संसार



शीतल-सुमन्द विभात-वायु निज मधुर मधुर सर-सर रव से—
"कहता है गति शील जगत यह" द्वार-द्वार चल कर सन से
सौरभ ने मिल कर के उसमे कहा "ठीक है, ठीक सखे।
आज यहाँ, कल वहाँ न जाने डोल रहा हूँ मैं कब से।"
"सदा सुगन्ध भरे फूलों का दिव्य जगत है यह सुन्दर।"
भन भन कर कहते फिरते हैं ललित लताओं से मधुकर।
लतिकाएँ भी शीश हिला कर मानो कहती हैं उनसे—
"एक फूल ही नहीं, किन्तु हैं साथ साथ में शूल प्रखर"
हेमाञ्चल धारिणी उषा है, और अरुण रक्तांशुक धर—
"नित्य मिलन मय जगत अमर यह" कहते हैं दोनों मिल कर
तभी धूल में मिल बतलाते तरल ओस के लघु मोती•
"अपनी तो क्षण भर की दुनियाँ हम क्या जाने जगत अमर ?"

पल्लव अवगुण्ठन सरका कर कलियाँ ताक रहीं हैं राह—
वे कहतीं "जग एक प्रदर्शनालय है छवि-दर्शन की चाह।"
पर फूलों ने कहा "न भूलो यहाँ किसी का कम कोई—
अपना रूप रंग ही होता जब फिर अपना याचक आह ?"
सान्ध्य अरुणिमा के कुंकुम से वधू प्रतीची रँग निज चीर
कहती है बस यही कि "दुनियाँ है सुन्दरता की तस्वीर"
किन्तु तभी घन वन की चादर बुनता कहता काल कुविन्द—
"सुन्दरता की चीर-प्रभा को घेर रहा तम का प्राचीर।"
पावन दूर्वादलास्तरण पर सुख से सोई विधु-बाला।
कहती है "जग एक मनोहर [illegible] है मौक्तिक-माला।"
नहीं! नहीं!! "जग मधु-मन्दिर है" तितली रानी बोली—
अरुण कपोल हुए पाटल के पीते ही जिसकी हाला।"
इस प्रकार से जग क्या है! जैसा जिसके जी में आया
अपने दृष्टि-कोण से उसने उसको वैसा बतलाया
शेफालिका कुञ्ज में बैठा कवि सुनता था मन के भाव—
और गुनगुनाता था "जग है एक रहस्य पूर्ण, माना"



सुप्त सौन्दर्य

दुग्ध फेनोज्ज्वल सदृश शय्या नहीं,
स्वच्छता जग की हुई साकार है।
सुन्दरी के मञ्जु मधुर-स्पर्श का—
लोम ही ऐसा अनूप अपार है।
सुन्दरी यों तल्प पर छवि पा रही—
प्रस्फुटित ज्यों मञ्जु सुमनों की लड़ी।
या सुभग सौन्दर्य्य के साम्राज्य की
शोभनाकृति राजलक्ष्मी ही पड़ी।
सुन्दरी के कलित कुन्तल में छिपी—
शीश-मणि थी निज प्रभा दिखला रही,
या कुहू निशि में कला शशि की दिखा
'सृष्टि में सम्भव सभी सिखला रही'

या सुधाकर सुन्दरी के सुमुख की
जब किसी विधि कर सका समता नहीं,
तब वही मणि-व्याज से आया न हो—
सुन्दरी की पुण्य-सेवा को कहीं ?
कृष्ण-कुञ्चित सी मनोहर दो लटें—
आ पड़ीं थीं चन्द्र मुख पर प्यार से !
सर्पशावक या सुधा पीकर अहा !
मुक्त होते थे विपाक्त विकार से—
या कि छवि की जाह्नवी में चन्द्रमा,
कालिमा निज धो रहा था चाव से
या कमल पर बैठ मधुकर श्रेणियाँ
कर रही मधुपान थीं सद्भाव से—
इन्द्र धनु ने मेघ से ले कालिमा
सुन्दरी की भ्रू मनोहर थीं रचीं,
या सनेही दीप दृग द्वय ने वहाँ—
प्रज्वलित युग वक्र रेखाएँ खचीं।
सुन्दरी के नेत्र दोनों बन्द थे
कर रहे थे सिद्ध वे मानो यही।
'यामिनी में पद्म हैं खुलते कहीं ?'
ठीक ही यह बात कवियों ने कही।

प्रभामय पिच्छिल अमोल कपोल में—
श्याम मणि-सा एक तिल अभिराम था।
'प्राण-पक्षी देख कर दाना फँसे'
काम ने ही या किया यह काम था।
प्राण-धन के ध्यान में हो मग्न या—
सो गयी यह सुन्दरी सुकुमारिका।
तिल नहीं, यह तो उन्हीं को देखने
प्रेमवश निकली विकल दृग-तारिका।
सुन्दरी के अरुण अधरों पर खिली
स्वप्नमय कुछ-कुछ मधुर मुसकान थी।
या प्रफुल्ल गुलाब की मृदु पखड़ी
बाल किरणों से हुई छविमान थी।
सुन्दरी के शिथिल केश कलाप में
सित-सुमन माला मनोहर थी पड़ी।
शत्रु तम को सैन्य या आलोक की
घेर कर के थी चतुर्दिक से खड़ी।
सुन्दरी के प्रेममय हृद्देश में—
मञ्जु हीरक हार था छवि दे रहा।
या कि वह अपने अतुल सौभाग्य से
पूर्व सञ्चित पुण्य का फल ले रहा।

रसिक-मन गमनागमन के मार्ग से—
सुन्दरी के भुज युगल थे सोहते।
देख कर जिनकी निराली छवि छटा
मनुज क्या अमरेश भी थे मोहते।
मञ्जु-मुक्ता ग्रथित नीला शुक अहा!
सुन्दरी पर था पड़ा छवि दे रहा।
नील नभ तारक निचय के साथ या—
दृष्टि-सुख मुख-चन्द्रका था ले रहा।
सुन्दरी की सुभ शोभा सौख्य के
भाव थी जागृत अनेकों कर रही।
फिर भला जागृत दशा की छवि छटा,
मुग्ध कर लेगी न क्या सारी मही।



नागरी

(१)

मञ्जुल महिमामयी महा, मृदु मूर्ति मनोहर—
श्रवण सुखद शुचि सरस, सुधा साफल्य सरोवर।
पूता, परम प्रफुल्ल प्रभा प्रतिभा प्रकाशिनी।
विशद विवेक विकाश वद्य वैभव-विलासिनी।

रसमयी, रुचिमयी, मुदमयी—
ललित लता लालित्य की।
उलहे मानस में छविमयी—
फिर हिन्दी साहित्य की।

(२)

नीति-निपुण नागरी नेह-नीरद घिर आवें—
बरसें बुन्द विवेक विमल वर वारि बहावें।
धो कर के मालिन्य हृदय थल मञ्जु बनावें
प्रति-पल परम पुनीत प्रेम के बीज उगावें।

फिर विकच उठें सब के बदन,
शान्ति सफलता फल लगें।
स्वर्गीय ज्योति से जगत में—
जगर-मगर जीवन जगें।

(३)

उपजें सच्चे सूर, शूरता फिर दिखलायें।
निज भाषा की भक्ति शक्ति सब को सिखलायें।
तुलसी, केशव, सुकवि बिहारी से फिर आयें—
करें धन्य सब भाँति जाति भाषा अपनायें।

बस चमक उठे फिर चन्द्र❀की,
चारु मनोहारी कला।
हिन्दी भाषा की कृपा से—
भारत हो फूला-फला।

(४)

हिन्दी ही फिर बनें हमारी जीवन-आशा।
हिन्दी ही फिर बनें हमारी सच्ची भाषा।
हिन्दी ही फिर हमें आर्य गौरव सिखलावे।
हिन्दी ही फिर हमें शान्ति की सुधा पिलावे।

हाँ! हाँ! हिन्दी ही फिर हमें—
भर दे सरस उमंग में।
रंग दे कपड़े क्या हृदय तक—
अपने उज्ज्वल रंग में॥

❀ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

(५)

पुलकित कर दे रोम-रोम निज प्रभा जगा कर।
निर्भय कर दे हमें वीर चरितो को गाकर।
अङ्कित कर दे हृदय देश की ममता प्यारी।
विकसित कर दे कलित कीर्ति की फिर से प्यारी।

बस घर घर में फिर ज्ञान की—
गुरु-गौरव गगा बहे।
जय! जय भारत! जय भारती!!
प्रमुदित हो सब जग कहे।

(६)

हिन्दी हित के लिए करें सर्वस्व निछावर—
हिन्दी रक्षा हेतु रहें सनद्ध बराबर।
प्यासे हों तो पियें नागरी रस के प्याले।
सब मतवाले रहें नागरी पर मतवाले।

हिन्दी प्रियतामय पन्थ के—
प्यारे होवें सब पथिक।
वर विजय-वैजयन्ती उडे—
विभव बढे दिन-दिन अधिक॥



मेरे मुख पर थोड़ी-सी भी दुख की देख उदासी—
दूर निहार उसे करते थे हे मेरे सुख राशी।
पर अब कठिन विरह बन्धन में प्राण बँधे अकुलाते—
कहो आज क्यों मुझ दुखिया को धीरज नहीं बँधाते?
क्यों कठोर हो गये? अये क्यों ममता दूर निसारी—
आओ एकबार कह दो 'प्यारी' मेरे, गिरधारी?

❀ ❀ ❀ ❀

बिना आपके पल भर को भी चैन नहीं मिलता है।
भानोदय के बिना कमलिनी का न हृदय खिलता है।
सुन्दर सुख की अभिलाषाएँ आँखों तक आती हैं—
किन्तु देख कर नहीं आपको विफल लौट जाती हैं।
विषम वियोग, विषाद भरे निशि वासर नित्य बिताते—
सूख गया तन और मरा मन पछताते पछताते।

❀ ❀ ❀ ❀

विरह सिन्धु मे जीवन नौका डूब रही है मेरी—
ऐसे समय नाथ! आने में करो न क्षण भर देरी।
प्राणाधार! कहूँ क्या कैसा तव बिन हाल हुआ है—
इस अभागिनी को अपना जीवन जजाल हुआ है।
घर ही काट रहा है दुनियाँ लगती सभी अँधेरी—
पीडा भी पीड़ा पाती है, पीडा लख कर मेरी!

प्रीतम ! गगन मध्य जब कोई पक्षी मुझे दिखाता—
बार बार तब वृत्त पूँछती, पर वह नहीं बताता।
वायुदेव से भी विनती करती हा हा ! खाती हूँ—
किन्तु सदा क्रोधित स्वर में मर मर उत्तर पाती हूँ।
विमुख आपके होने ही से विमुख हुआ जग सारा—
दुख ही दुख रह गया निठुर जन सुख ने किया किनारा।
प्रेम भरी चितवन मेरी ही मुझे बाण-सी लगती—
निद्रा भी सुख स्वप्न दिखा कर मुझ दुखिया को ठगती

हाय ! आपके चलने पर क्यों प्राण न चले अभागे—
क्यों न उसी क्षण टूट गये ये आशा के ध्रुव धागे ?
मुझे अकेला देख मदन भी नाथ ! लगा डरपाने—
पाँच बाण को त्याग निर्दयी लगा पचास चलाने।
छलनी सा कर दिया हृदय है नेक न मेरी मानें—
मैं अबला क्या करूँ हृदय की हृदयेश्वर ही जानें ?

चुन-चुन कर फूलों की माला अब किसको पहिनाऊँ ?
किसके लिए हृदय-वीणा से गीत मनोहर गाऊँ ?
किसको कर शृंगार रिझाऊँ ? किसको कण्ठ लगाऊँ ?
प्यारे प्रीतम ! प्यारे प्रीतम ! कह कर किसे बुलाऊँ ?

इसी भाँति से सोच सोच कर मधुर प्रेम की बातें—
दिन तो गिन गिन कर कटते हैं, रोते रोते रातें।
वाणी प्रीतम प्रीतम कहते कहते थक जाती है—
पर न प्राणप्यारी वह प्रत्युत्तर में सुन पाती है।
सचमुच कवियों ने भी कैसी झूठी बात बखानी—
'किये कर्म का फल मिलता है' की है निरी कहानी।
यदि ऐसा होता है तो फिर आप नहीं क्यों आते।
वाणी को उसकी करनी का फल क्यों नहीं चखाते ?



प्यारे ! जिस पवित्र मानस पर था अधिकार तुम्हारा—
उस पर हा ! वियोग चिन्ता ने दाहक जाल पसारा।
'वस्तु आपकी और दूसरे यों अधिकार जमायें—
दुख है आप मौन हो बैठें, सुन कर शीघ्र न आयें !



क्या अब सूना सदा रहेगा भाग्य भवन यह मेरा ?
प्राणनाथ ! क्या अब न पड़ेगा पल भर इसमें डेरा ?
क्या अब प्रेम पन्थ में कोमल कुसुम नहीं फूलेंगे ?
क्या अब हृदय, हृदय के झूले में न कभी झूलेंगे ?



चन्द्र देख कर मुख सुधि होती नीरज देख नयन की—
कंचन कलित देख कर होती याद तुम्हारे तन की।

धन को देख याद आते हैं कच तव घूँघर वाले—
प्रियतम ! तब डसने लगते हैं एक संग सौ काले।



लतिकालिङ्गित देख द्रुमों को, अङ्क में भरने को—
ललचाता है यह मन मेरा प्राण सुखी करने को।
बहुत खोजने पर भी सम्मुख जब न तुम्हें पाती हूँ।
हृदय थाम कर, मन मसोस कर, रो कर रह जाती हूँ।
पपिहा पी पी पी पी करके लगता तभी चिढ़ाने—
विषवत विषम वियोग वेदना बहि विशेष बढ़ाने।



विरह विदग्ध हृदय को लख कर लोचन नीर गिराते—
किन्तु निर्दयी हो तुम ऐसे दया न तनिक दिखाते !
सोचो तो क्या तुम्हे उचित है प्यारे ऐसा करना।
पहिले प्रेम प्रतिज्ञा करके पीछे हाय ! मुकरना ?



प्राणनाथ ! तुमने उदारता की क्यों बान बिसारी ?
नहीं ! नहीं !! यह नहीं किन्तु खोटी तकदीर हमारी !
मुझ से तो कानों के कुण्डल भाग्यवान दिखलाते—
कलित कपोलों से हिल मिल कर मङ्गल मोद मनाते !
हाय ! दैव ने भी मेरे सँग कब का द्रोह निभाया—
जो न आपके कम्बु कण्ठ का प्रियतम हार बनाया।

होती हार हृदय बिच तो मैं सदा पिया के रहती—
यों न निराश झेल झंझट को आज दुसह दुख सहती।

हे मेरे प्रभु? मुझे शक्ति दो मैं पक्षी बन जाऊँ—
एक बार हाँ एक बार उड कर दर्शन कर आऊँ।
देखूँ तुम्हें धूप में तो परों से करलूँ छाया—
जब वे लगें निरखने ऊपर तब रच दूँ यह माया—
जाकर के चरणों में उनके झटपट मैं गिर जाऊँ—
अपना पत्र आप ही दे कर फूली नहीं समाऊँ।



प्रेम-पत्र

जो यों भूल गई हो मुझको अनायास हो तुम इस काल-
जैसे लता भूल जाती है पृथ्वी पर फूलों को डाल।
किन्तु लता फूलों को तज कर निज समीप ही देती वास,
पर तुमने तो छोड़ दिया है मुझे वियोग वधिक के पास।

चिन्ता नहीं वियोग वधिक की चाहे वह वध कर डाले,
पर न तुम्हारे मधुर प्रेम का पापी कहीं पता पा ले।
बस इस चिन्ता ही से मेरा क्षीण हुआ है तन सारा—
घूम रहा हूँ पागल सा मैं वन वन में मारा-मारा।

सोच रहा हूँ प्रिये! अकारण धारण की क्यों निठुराई?
ममता रहित हुई क्यों ऐसी सुरति हमारी निसराई।
क्या शशि मुखी क्रूरता शशि की शशि से है तुमने पाई?
क्योंकि कलंकी शशि चकोर प्रति करता है नित कुटिलाई।

या मृग-नयनी कहलाने से मृग का है स्वभाव पाया—
दूर-दूर भगने ही को है केवल उससे अपनाया।
या चित चोर कहाने ही से चित्त चुरा के हो भागी!
या फिर प्रेम परीक्षा लेने की इच्छा मन में जागी!

प्राण प्रिये! जो कुछ सोचा हो आकर मुझे बता जाओ!
दर्शन की प्यासी अँखियाँ हैं, इनकी प्यास बुझा जाओ!
हृदय भवन में तुम बसती हो इसके करने को प्रत्यक्ष—
हाय! दया कर के अब आओ एक बार तो पुन समक्ष।

दुखियों पर दाया करना ही सदय हृदय की है पहिचान—
इसे जान कर भी सुलक्षणे! क्यों बनती हो आज अजान!
इस जीवन में दया दिखाने का जब-जब अवसर आता—
बुद्धिमान जन उसे व्यर्थ में कभी नहीं खो पछताता!
फिर क्यों दयामयी हो तुमने कार्य किया प्रतिकूल अहो!
निर्दयता औ' दया बीच तो युद्ध छिड़ा है नहीं कहो?
जो यों दया युद्ध में अपने प्रकृत भाव के हो विपरीत—
निर्दय बन के चाह रही है निर्दयता पर अपनी जीत?
या विधि ने ही स्वयं दया को निर्दयता कर दिखलाया—
कि यों विश्व परिवर्तन होता प्राणिमात्र को सिखलाया।
या कि तुम्हारे शुद्ध प्रेम के योग्य नहीं यह तुच्छ शरीर—
कहो! कहो!! क्या इसीलिए तुम नहीं बँधाती किञ्चित् धीर?
या निज प्रणमिजनों से पाकर प्रेम-देव गुरुतर अपमान—
भूतल से ले विदा सिन्धु को बना चुके निज वासस्थान!
या स्वर्गोपम सुछवि निरखने की इच्छा रख कर मन में—
चला गया है प्रेम यहाँ से किसी मनोहारी वन में?
या कि सृष्टि सुन्दरि से पैदा नव वय में वैराग्य हुआ।
या कि हमारा ही विराग मिस उदित आज दुर्भाग्य हुआ।
जो यों प्रेम, प्रेम तज कर के बन कर प्रेम नामधारी—
मुझ दुखिया को दुख देने को अतिशय हुआ त्रासकारी।

सचमुच मन्द भाग्य भी मुझ-सा और कौन है भूतल में—
पुष्प हाथ में लेने ही से कण्टक होता है पल में।
हाय! मृणाल तुल्य भी मेरा भाग्य नहीं विधि ने लेखा—
क्यों कि मृणाल प्रिया के भुज से उपमा देते है देखा।

मुझ प्रेमी को छोड अधर का हो आये प्रवाल उपमान—
धिक् है मेरे इस जीवन को निन्दनीय है कवि का ज्ञान।
मैं निराश होकर पथ देखूँ, देखे छवि दर्पण प्यारी—
फिर कैसे मैं मन समझाऊँ ? क्यों न मुझे हो दुख भारी।

विधे! जलाना ही था मुझको, तो रखते बस इतना ध्यान।
वहीं दीप बन सम्मुख जलता और देखता वह मुसकान।
या फिर कर के कृपा मुझे वह देते मधुमय स्वप्न बना—
जिससे हो सम्मिलन प्रिया से तो लेता कुछ मोद मना।

क्या करुणा ने भी मेरे प्रति करुण भाव का कर निःशेष—
परुष वृत्ति को अपनाया है देने को अति दारुण द्वेष।
हा! जब से प्रतिकूल हुई तुम तब से सब प्रतिकूल हुए।
इस दुर्भाग्य जनित जीवन में ललित फूल भी शूल हुए।

* * *

मेरी ही सुस्मृति अब मुझको आठों पहर जलाती है।
मधुर प्रेम की याद दिला कर विरह बाण बरसाती है।

जिन आँखों में वास तुम्हारा, उन आँखों में अश्रु बसे–
लख कर यह दुर्दशा प्रेम की क्यों न तुम्हारे शत्रु हँसें।

जिन अधरों पर मधुर अधर धर तुमने अमृत बहाया था—
इस असार संसार बीच बस स्वर्ग यही बतलाया था।
उन अधरों पर आज उदासी प्राणों की प्यासी छाई—
क्या यह भीषण दृश्य न होगा तुमको कुछ भी दुखदाई।

दूर देश-वासी हिमकर भी आग यहाँ बरसाता है।
क्या न चन्द्रिका के मिस वह भी मेरी देह जलाता है?
मलय पवन भी आज हमारे हेतु हुआ है विषम कृपाण–
संकट पर संकट सम्मुख हैं कैसे हाय बचेंगे प्राण।

उषा अरुण को और दामिनी घन को है सतत भजती।
रजत हासिनी प्रभा प्रभाकर को न कभी पल भर तजती।
जड़ हो कर के भी जब इन में भरा हुआ है इतना प्रेम।
फिर क्यो चेतन हो कर तुमने त्यागा प्रिये! प्रेम का नेम?

❀ ❀ ❀

अब क्यों देर प्रिये! करती हो! कृपा करो सत्वर आओ?
दर्शन रस का अमृत पिला कर फिर से जीवन दे जाओ!

❀ ❀ ❀

पूर्ण करोगी प्रिये! हमारी तुम अवश्य ही अभिलाषा—
बन्द पत्र को मैं करता हूँ, करते हुए यही आशा।

विस्मृति



मुकलों में मेरा चिर रहस्य
सरिता में जीवन का प्रवाह।
वल्लरियों में फूलों के मिस
खिलता मेरा यौवन अथाह।

मेरी आशा की एक किरण
लेकर चमकी स्वर्णिम ऊषा।
विस्तृत नभ-मण्डल है मेरे—
रत्नों की छोटी मञ्जूषा।

मेरी लज्जा की लाली से—
रञ्जित पाटल के मृदु-कपोल।
मेरे वचनों की पा मिठास—
मीठे कोयल के हुए बोल।

कण्टकित देख मुझको, तरु में–
रोमाञ्च पल्लवों का फूटा।
आवेग हृदय का मेरा ही–
गिरि से निर्झर बन कर छूटा।

मेरे चरणों के छूने को–
धरती पर लोट रही छाया।
सुरभित समीर झोंका मुझको–
आमन्त्रण देने को आया।

रवि की भोली किरणें आतीं–
मुझ से नीरव करने खेला।
चाँदनी नहीं छिटकी भू पर,
मेरी खुशियों का है मेला।



मैं

(१)

जीवन का जीवन, विकास का विकास हूँ मैं,
परम प्रकाश का प्रकाश मैं निराला हूँ।
राम श्याम शङ्कर त्यों नाम हैं अनेक मेरे-
मुझ सा न कोई हर बात में मैं आला हूँ।
प्रकट हूँ मैं ही, मैं ही अन्दर छिपा हुआ हूँ,
दाएँ-बाएँ चारों ओर बुना जैसे जाला हूँ।
शशि, भानु, तारे मेरे नाचते इशारे पर,
विश्व मुझ में है, और मैं ही विश्ववाला हूँ।

(२)

कारण विहीन जगका मैं मूल कारण हूँ,
एक हूँ परन्तु मैं अनेक में समाया हूँ,
नाना बन्धनों में बँधा हुआ भी मुक्त ही हूँ—
अपना किसी का न किसी का मैं पराया हूँ,
आदि में था मैं ही और अन्त में रहूँगा मैं ही—
जाऊँगा कहाँ मैं, जब कहीं से न आया हूँ ?
'तुम' मैं नहीं हूँ और 'मैं' भी मैं नहीं हूँ किन्तु-
मैं हूँ कौन इसको समझ मैं ही पाया हूँ।

(३)

बिन्दु में मैं सिन्धु औ' बिगाड़ में बनाव हूँ मैं–
पास सब के हूँ और सब से ही दूर हूँ।
अपनी ही छवि पै मैं आप मरता हूँ नित्य,
और अपने ही सुख में मैं आप चूर हूँ।
हर साँस में मैं साँस लेता हूँ निरन्तर ही–
और हर आँख में मैं नूर मशहूर हूँ।
दोष मुझमें है यही दोष से रहित हूँ जो–
गुण यही है जो गुण से मैं भरपूर हूँ॥

(४)

दुख में न भीति और प्रीति सुख में न मुझे—
मेरे लिए रोना, हँसना सभी समान है।
जानता हूँ सब को न सब जान पाते मुझे—
लघु तृण में भी मेरी महिमा महान है।
जब सब सोते तब मैं ही जागता हूँ एक—
ज्यों ज्यों लोग भूलें त्यों त्यों आता मुझे ध्यान है।
पार पाना कठिन अपार गुण गाथा मेरी—
'दिलवर मैं हूँ मेरा आशिक जहान है।'



सुकवि संकीर्तन



यह नव रत्नमयी नर-माल !
पहनो नव-रस रसिक रसाल !

मानी मान सर के विहारी हो मराल तुम्हीं,
हृदय-कमल के खिलाने वाले सूर हो।
कीर्ति है अतुल सी तुम्हारी कवि-मण्डल में—
कर्मयोगी केशव के भक्त भर पूर हो।
सामाजिक भव्य भावनाओं के विभूषण हो,
मतिराम की सी स्वच्छ, दूषणों से दूर हो।
ललित कला के हो प्रकाशक प्रसिद्ध चन्द्र,
नर देव सच्चे एक वीर मशहूर हो।
लघु गुरु दोनों का है आदर तुम्हारे यहाँ—
प्यार कर पास पास दोनों को बिठाते हो।
सुन्दर सुवर्ण से भी कोष है तुम्हारा भरा—
अर्थ है अमित कहीं माँगने न जाते हो।
रीति जानते हो गुण-गण मानते हो सदा—
यति हो न तो भी नेम यति का निभाते हो।
वर वृत्ति धारी हो, सुकवि सुखकारी तुम्हीं—
दूषण भगाते भूरि भूषण सजाते हो॥

लिख देना

अन्तिम विदा लता से लेते कवि ! तुमने देखे हैं फूल—
सदा सहास्य वदन फूलों के मिल जायेंगे पल में धूल
सर्व श्रेष्ठ सौन्दर्य प्रकृति का हो जायेगा अन्तर्द्धान—
इस विषाद से क्षुब्ध हृदय हो लिखे अनेकों तुमने गान

बीच बाहुओं को फैला कर उस अप्राप्य को पा न सकी—
कल-कल का संगीत गान कर पर पूरा वह गा न सकी
सरिताके इस दीन भाव पर कवि ! तुमने हो व्याकुल मन—
कर डाला है एक करुणतम गीतों का संसार सृजन।

वट की पार्श्ववर्तिनी छाया व्याकुल लोट रही भू पर—
और गर्व से खड़ा हुआ है वृक्ष उठाये सिर ऊपर।
उसके इस अज्ञान भाव पर कवि तुमने रह कर चुपचाप
कितने गीत लिखे हैं दुख के कितना पाया है परिताप।



'नभ में अन्य न मुझ सा कोई जिसे दिखाऊँ विभव वि
पूर्ण चन्द्र भी इस चिन्ता से घटता रहता सदा उद
उसकी इस चिरान्ध चिन्ता से कवि ! तुमने हो पीडित
कितने गीतों में लिख कर के चाहा प्रभु से उसका आ

कवि ! तुमने करुणा-से कोमल लिखे अनेकों सुन्दर गान।
किन्तु चरम सौन्दर्य सृष्टि के 'मानव' पर कुछ दिया न ध्यान
जो भूखों मर रहे कठिन है जीवन-तरी जिन्हें खेना—
हे मेरे कृपालु कवि ! उनकी बातें भी तो लिख देना।



उलहना

दीन-जनों की आह में न कुछ असर है,
उसमें अब कुछ चल न रहा भगवान् है।
इसीलिए क्या आप नहीं हो सुन रहे—
और इधर अब बनी जान पर आन है।

वह युग भी लद गया गरीब-निवाज जब,
कहते थे सब तुमको एक जबान हो।
पर अब जो तुम बुरा न मानो तो कहें—
महलों के ही आप बने महमान हो।

रूखी-सूखी मोटी जौ की रोटियाँ
टूटे-फूटे और झोंपड़े फूस के।
अब तुमको हैं एक आँख भाते नहीं—
आगे मोहन-भोग झाड़-फानूस के?

पर सच कहना प्रभो! तुम्हें मेरी कसम—
क्या उनमें भी वही प्रेम का स्वाद है?
अथवा भीषण दीन-जनों की आह का—
व्याकुलता मय उनमें भरा विषाद है?

बतला दो हे नाथ! किसलिए आपने—
फेरफार यों किया पुरानी बान में।
क्या दुनियाँ की हवा आपको भी लगी,
दया दीन के लिए दीन या दान में?

जो कुछ भी हो नाथ! हमें स्वीकार है,
पर इतनी यह विनय भूल जाना नहीं।
'इस प्रकार से प्रभो! आपके विरद में—
अन्तर हा! अणुमात्र न आ जावे कहीं?



आकांक्षा

संकट में हो धैर्य धरा-सा
जो दिन रात प्रहार सहे।
किन्तु एक भी उपालम्भ का—
शब्द भूल के नहीं कहे।

दिव्य दिवाकर-सा दश दिशि में
प्रबल पराक्रम प्रकट करें।
इस अज्ञान अनर्थ अँधेरे
का सारा अभिमान हरें।

शरत्काल के मधुर चाँद-सा,
यह जीवन उज्ज्वल होवे।
अपनी उज्ज्वलता से सारी—
संसृति का जो तम धोवे।

ग्रीष्म काल के तापित तरुओं को—
पावस का-सा चुम्बन।
सुखदायक हो सब प्रकार से
सुहृज्जनों का मधुर मिलन।

नभ-मण्डल सा तना हमारा—
होवे विस्तृत दया-वितान।
नीच ऊँच का भेद छोड़ कर
हो सब के ही हित का ध्यान।

भीषण तूफानों की चोटें
पर्वत-सा सहलें चुपचाप।
किन्तु तनिक भी सत्य कथन में—
जाये नहीं कण्ठ स्वर काँप।

आँसू से भीगी छाती पर—
परम शान्त्वना का-सा हाथ।
ध्रुव हो कर विश्वास हमारा
सतत रहे हमारे साथ।

कोमल पुष्पों के अधरों पर
सुधा सिक्त मृदु हास समान।
आत्म ज्ञान से भरा हुआ हो—
सब का मानस हे भगवान।



असीम अनुकम्पा



देव तुम्हारी क्या धन्य है जो तुमने अपनाया ?
रोते हुए हृदय को प्रियतम ! हँस कर हृदय लगाया।
देव ! तुम्हारी०।
आँखों को विश्वास नहीं था ढूंढ तुम्हें वे लेंगी—
पर तुमने निज रम्य रूप का अमृत उन्हें पिलाया।
देव ! तुम्हारी०।
बाहर की तो सारी दुनियाँ उजड़ चुकी थी अपनी—
इसीलिए अन्दर का तुमने नव संसार बसाया।
देव ! तुम्हारी०।
जिस परिताप मैल को अब तक धो न सके ये आँसू—
उसे एक क्षण भर में तुमने धोकर दूर बहाया।
देव ! तुम्हारी०।
हम अपने को कहें न क्यों बड़भागी तुम वत्सलाओ—
चल कर के मेहमान स्वयं जब अपने घर पर आया।
देव ! तुम्हारी०।



अनुमान



यदि शशि के है हृदय,
हृदय में है कुछ भी छवि की पहिचान।
तो वह तुम्हें देख कर नभ से,
पाता होगा मोद महान ?
सम्भव नहीं देखना—
नन्दन वन के फूलों की मुसकान,
किन्तु तुम्हारे मन्द हास के—
वह भी होगी नहीं समान ?
यद्यपि नहीं श्रवण सुन सकते—
स्वर्गङ्गा का कल कल गान।
पर उस से मीठी ही होगी,
नाथ ! तुम्हारी मादक तान ?



मीठी चुटकी

दूर ही सही मैं किन्तु तुम तो हो पास सदा,
फिर बतलाओ क्यों न मेरी दृष्टि आते हो।
मैं तो हूँ अबोध इसलिए भूल जाता तुम्हें—
तुम ही सबोध फिर क्यों मुझे भुलाते हो।
निष्ठुर मैं, क्रूर काम करना न छोड़ता हूँ—
तुम हो दयालु क्या दया को बिसराते हो।
चतुर बड़े हो, है तुम्हारी चतुराई बड़ी!
कोरे नाम से ही नाथ! बड़े कहलाते हो!

दुखिया दृगों ने नेक झलक न देख पाई
यद्यपि रगड़ता रहा मैं द्वार पर माथ।
हाथ जोड़ कर तुम्हें नित्य ही मनाता रहा—
तो भी तुम भूल कर भी न आये मेरे हाथ।

दिन-रात साथ रहने की अभिलाष रही—
पर तुमने न कभी दिया पल भर साथ।
खोके अपने को अब पाया जो तुम्हें तो कहो—
इसमें तुम्हारा अहसान कौन सा है नाथ

मूर्ति मोहिनी है, मन मोहते हो सर्वदा ही—
कोमल स्वभाव, शान्ति सुख सरसाते हो।
प्रेमनिधि नाम है तुम्हारा प्रेममय बड़ा—
बरबस प्रेम के समुद्र में डुबाते हो।
गले से लगाते हो उठाते हो पतित को भी--
तुम्हीं एक पावन परम कहलाते हो।
गुण, क्या तुम्हारे ये न पूरे बाँधने को मुझे
जो यों नाथ! और भव बन्धन बनाते हो।

कैसे गुरु गिरि को उठाया होगा नाथ जब-
उठता उठाये दीन का न लघु दुःख भार
सुनता यही हूँ आततायियों का अन्त किया
किन्तु अब कैसे इस पर करें इतबार?
और किसी ने बचाई होगी द्रौपदी की लाज
तुम जो बचाते तो न होती अब बार बार
कैसे एक गज की गुहार सुन दौड़ पड़े—
लाखों मानवों की जब सुनते नहीं पुकार॥



तलवार

कोश मुक्त हो के, कोश छीनती विपक्षियों के–
　　नङ्गी होके शर्म, शर्म वालों की बचाती है।
कुटिल हो धर्म्म धन हरने न देती कभी–
　　पानीदार होके युद्ध-ज्वाला को जगाती है।
उज्ज्वल हो काले करती है शत्रुओं के मुख,
　　चलती है पर कीर्ति अचल कमाती है।
तेज धार तो भी डूबते को है लगाती पार—
　　बाँधते ही भीरु बन्धनों से तू छुड़ाती है॥

(२)

लोहे की बनी है लोहा तेरा सभी मानते हैं—
　　बाढदार बैरियों के वृन्द को बहाती है।
खुलते ही म्यान से तू खोल देती कलई है—
　　गिरते ही गाज ऐसी रिपु को गिराती है।



सर-सर कर चलती है सर कर फाट—
सर कर समर को विजयी बनाती है।
अचरज क्या जो अरि को मुठी में रखती तू—
मूठ वाली वीरों की मुठी में छवि पाती है।

(३)

खर तर धार फिर क्यों न हो विकट काट,
जहर बुझी है फिर मृतक बनावें क्यों न ?
कठिन कठोर सन लोहे की बनी है फिर—
दया-हीन शत्रुओं को, पीड़ा पहुँचावे क्यों न ?
कुटिल कराल अग्नि ज्वाला के समान फिर—
कुटिलों को विकराल काल सी दिखावे क्यों न ?
वार युक्त जब 'तलवार' तेरा नाम ही है—
सब वैरियों को वार कर के बिछावे क्यों न ?

(४)

शान दिखला के चकाचौंध करती है दृग—
चपला सी चपल चमकती है बार बार।
बाढ़ पर रख सब कुछ छीन लेती फिर,
देह से लिपट कर कुटिल जनाती प्यार।
मार मार कर दल हीन कर देती तन,
नम्र होके मूँदी मर्यादा देती है उधार।

कण्ठ लग कर पीती रुधिर न होती तृप्त—
कौन जाने बार वनिता है या है तलवार ?

(५)

खुलती न मूँठ पलभर को बँधी ही रहे—
लोभी रक्त पीने के लिए ही बस यार हैं।
कोश पास में है पर प्यास मिटती न नेक—
पर धन हरने को पैने धरे धार हैं।
कुटिल हैं बाहर से लगता पता न कुछ—
अन्तर लगे से करें अन्तर अपार हैं।
केवल अकार ही से भेद का प्रकार नहीं—
कृपण-कृपाण देखो दोनों एक तार हैं।

(६)

दोनों में है पानी, दोनों रखती हैं तेज धार—
दोनों का ही जग में प्रसिद्ध है कठिन काट।
धाढ़ वाली दोनों जब धड़-धड़ चलती हैं—
तब बड़े-बड़े शूरवीर होते बाराबाँट।
यहाँ तक सरिता औ असि में समानता है—
पर है अनोखा यही एक समता का ठाट।
'सरिता के घाट तो उतर जाते जीवित ही—
पर मर कर ही उतरते हैं असि-घाट'॥

(७)

ताकती जिसे है उसे छोड़ती न जीता कभी—
क्रोधानल में जला के कर देती ढेर है।
हस्ती को मिटाती दुनियाँ से एक हाथ में ही—
मार है विकट मानो मृत्यु ही की टेर है।
तेरे सामने न किसी की भी कुछ पेश जाती—
क्षण में ही जबर को कर देती जेर है।
इसीलिये मेरे जान शेर सम होने से ही—
कवियों से तूने नाम पाया शमशेर है।

(८)

भूषण भुजग के ये भूषण भुजग की है—
मार मारा उन्होंने तो ये भी मार मारती।
मुण्ड माल से है जैसा उनका विचित्र प्रेम—
वैसे ये भी मुण्ड माल प्रेम उर धारती।
तीसरा नयन खुलते ही प्रलै होती वहाँ—
ये भी खुलते ही पूरी प्रलय प्रचारती।
विप पिया उन्होंने तो ये भी विप से बुझी है—
त्रिपुरारि ही-सी तेग बुद्धि है विचारती।

(९)

असि होकर अस्तित्व मिटाने से कब डरती ?
पानीदार, परन्तु पराया जीवन हरती ?
तेरा अद्भुत घाट, पार उसको ही करती—
पहले जिसके एक बार है पार उतरती।
फिर अपने उलटे काम ये, जब लाती तू ध्यान में—
शरमाती पाती दुख तभी छिप जाती है म्यान में ?

(१०)

सूधिन कौं सूधे सबै, है जग की यह बान—
पै कुटिलन कौं एक तैं सूधी होति कृपान ?



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१० प्राक्कथन	१२	स्वादीय-सी	स्वादीयसी
१० "	१३	कहीं है	कहाँ है
१३	१२	में	मैं
१८	६	पसृण	मसृण
२२	६	झलका दी	झलक रही
२३	२	प्रेम	प्यार
२६	१८	भूल	मत्त
३५	७	लजली	लजीली
५४	१३	उगता	ठगता
६७	६	मुग्ध	मुक्त
७०	५	छपने से रह गया	अथवा (है)
८५	६	है	ही
८८	१०	कज्ञल	कज्जल
१०८	४	सुखमा	सुख का
११६	२	सिंचा	सिंचा
१२५	५	विरहणी	विरहिणि
१४४	६	रक्ता-शुक	रक्ताशुक
१४५	१५	भाया	माया
१४६	५	नीला शुक	नीलाशुक
१५७	३	अङ्कम	अङ्कम
१५६	२	घबडाते ये	घबड़ाये-से
१६४	शीर्षक	विस्मृति	विस्तृति
१६६	५	बीच	वीचि
१६६	६	पार्श्यवर्तिनी	पार्श्ववर्तिनी
१७४	१०	सहलें	सहले
१७८	१६	करें इतवार	करूँ एतवार
१७८	१८	बारबार	तार-तार

शुभाशंसा

आज कानपुर में श्रीयुत् चातकजी से मिलने और उनकी हस्त लिखित पुस्तक 'नैवेद्य' देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। पुस्तक को मैंने ध्यानपूर्वक देखा। उनसे सूचित हुआ कि आप में कविता का बीज यथेष्ट मात्रा में विद्यमान है। आपकी कृति मुझे अत्यन्त सरस और सुन्दर मालूम हुई। भावानुगामिनी भाषा और अनेक विषयों पर कवि सुलभ कल्पना, आपके कवित्व की द्योतक है। पनिहारिन, प्याला, तम, तलवार, आदि आपकी उत्कृष्ट रचनायें हैं। मनन, परिशीलन और अवलोकन से यदि आप अपना रचनाभ्यास बढ़ाते गये तो किसी दिन आप राष्ट्र भाषा हिन्दी के एक उज्ज्वल रत्न सिद्ध होंगे। ईश्वर करे मेरा यह अनुमान सच निकले।

२० मई १९३० —महावीरप्रसाद द्विवेदी